UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180035
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83·1 / J 42 T Accession No. G.H. 737

Author जायसवाल, हरीश।

Title ठंडी चाय। 2009V-8'

This book should be returned on or before the date last marked below.

ठंढी चाय

लेखक

श्री हरीश जायसवाल

प्राप्ति-स्थान

हरीश जायसवाल,
केदार नाथ रोड,
मुज़फ़्फ़रपुर
(बिहार)

सर्वाधिकार लेखक के अधीन

प्रथम संस्करण

सं० २००६

मूल्य दो रुपये

मुद्रक

बीरबल सिंह

श्रीगोपाल प्रेस, मुज़फ़्फ़रपुर।

बहुत ही अच्छी

सुषमा

की

सुन्दर मुस्कान को,

जो मेरी भाग्य-रेखा बन गई है।

जेन ऑस्टेन का उपन्यास 'प्राइड एण्ड प्रेज्युडिस' पढ़ रहा था। अचानक एक अभागा पतंगा मोमबत्ती से जला और 'प्राइड' पर गिर कर मर गया। मेरी साँस से उड़ कर उस पतंगे का अधजला पंख 'प्रेज्युडिस' पर आ रहा। आखिर ऐसा क्यों? यह पहेली उस रात से भी ज्यादा गहरी है कि रात को हँसते-हँसते सोनेवाली महारानी का तकिया सुबह को आँसुओं से तर क्यों पाया जाता है।

—हरीश

— भूमिका —

वह जो किसी ने कहा है न कि सुबह का रंग देख कर ही हम दिन का अन्दाज़ पा लेते हैं, तो लीजिये हमारे हरीश जी की उठती कोपलें हैं तो क्या, अभी से ही उनके रंग और बू पर लगी है रस की प्यासी दुनिया खिंच आने। और क्यों न खिंच आये, कहिये— आख़िर लेखनी तो किसी आयु या आय की पौर की बाँदी नहीं।

वैसे तो आपमें क्या क्या नहीं है, मगर अपनी अपनी नज़र! जो चीज़ हमें सबसे अधिक मीठी लगती है, वह है आपकी ज़बान की अनूठी चाशनी और शैली की रवानी।

क्या कहने हैं आपकी "ठंढी चाय" की। कल आँखें डुबो पीने जो बैठा तो एकबारगी ऐसा डूब गया कि सामने टेबुल पर रखी गरम चाय भी ठंढी पड़ गई। अब उस रस की चाह के आगे प्याले की चाय क्या मज़ा दे पाती भला। बस वही बात—

"चश्म साक़ी देखकर क्या जाम साक़ी देखिये"

तो लीजिये कहानी के क्षेत्र में आपकी देन अपनी एक जगह रखती है बराबर। कितनी कहानियाँ तो आज की बँधी-सधी लीक से मीलों दूर जीवन के एक नये पहलू पर ताने-बाने बुनती हुई दीख पड़ती है।

"लाल गुब्बारे" में हम पाते हैं एक ऐसी विलक्षण तरुणी जो अपने आँचल में माँ की ममता और स्नेह का दरिया चुराये बैठी है निरन्तर—वह अपना एक नन्हा मुन्ना जो खो चुकी है बहुत पहले। और, लीजिये वह अपने हृदय का युग-युग से संजोया हुआ प्यार उड़ेल देती है दिल खोल अपने सौतेले जवान बेटे 'प्रशान्त' के सर पर— अपने बिछुड़े हुए बेटे की प्रतिछाया जो पाती है उसमें।

आधी रात गये अपने उस जवान सौतेले बेटे को एक अजब आवेश में आकर बाहुपाश में बांध लेना फ्रायड के हिमायती चाहे जो समझें, पर लेखक ने तो नारी हृदय की पोर पोर में रमी हुई मातृत्व की स्वाभाविक प्रवृति पर ही अपनी उँगली रख दी है।

तो लीजिये, काम की लपट पर भी हावी हो पाती है मातृत्व और स्नेह की प्रवृति।

एक नारी किसी युवक को केवल प्रेमी के ही रूप में नहीं, बेटे की तरह भी प्यार कर सकती है, उस पर क्या-क्या न न्योछावर कर सकती है—मान, मर्यादा, सुख-सुविधा, सब कुछ। "काली शिरवानी" तो नारीत्व के इसी पहलू की ओर इंगित करती है, बेजोड़।

यह नारी आज की नई रोशनी की नारी से न्यारी चाहे जो दिखे, पर एक कलाकार की दृष्टि तो सतह पर ही तैरती नहीं रह जाती, तह तक भी उतर पाती है अपनी धुन में।

"सेल्यूलाइड की गुड़िया" में तो यह पहलू और भी निखर उठा है। यहाँ तो मातृत्व ही नारी जीवन का सर्वस्व ठहरा; काम की वृत्ति तो आई है उस चरम परिणति की प्राप्ति में हाथ बटाने जैसे।

हम हरीश जी की कला के क़ायल हैं। वे फूलें-फलें, उनकी चाह और उछाह, मनन और लगन बनी रहे—हमारी तो यही दिली तमन्ना है, यही प्रार्थना।

सूर्यपुरा-स्टेट,
शाहाबाद
२६—७—१६५२

राधिकारमण प्रसाद सिंह

'ठंढी चाय' से पहले—

तो, ये कहानियाँ अब आपकी हैं जो कल तक मेरी थीं। ये जीवन के आइने हैं जिसमें तरह-तरह के अक्स नज़र आयेंगे, लेकिन चेहरे तो आपही के हैं। कहीं कहीं आपको यह शंका हो सकती है कि कहानीकार का व्यक्तित्व शब्दों की चिलमन से झाँक रहा है और ऐसा होना असम्भव भी तो नहीं! क्योंकि Bruce Pattison, M. A., Ph. D. ने कहा है—'The short story is life filtered through author's own personality.' हो सकता है, आपको कुछ कहानियाँ सत्य से दूर कोरी कहानियाँ ही लगें, तो मैं गेटे की यह पंक्ति आपके सामने रखूँगा—'सत्य की ही अन्तिम परिणति कहानी कहलाती है।'

जिन पात्रों पर जुल्म ढाये गये हैं यदि उनके लिए आपकी आँखों में आँसू झिलमिलाने लगते हैं तो इसे मैं अपनी जीत समझूँगा। हँसमुख और ज़िन्दादिल पात्रों के साथ-साथ आप भी ज़ोरो से हँसने लगें तो यह मेरा सौभाग्य। जिनकी कश्तियाँ किनारे तक पहुँच कर डूब गई हैं और आँखों में अरमानों के फूल सींचने के लिए दो आँसू भी न हों, उनके लिए अगर आपके हृदय में सहानुभूति उत्पन्न होती है तो समझूँगा मेरी मिहनत अकारथ न गई।

यह मेरी पहली उमंग है जिसने काग़ज़ का वेष धारण किया है। इसकी आप क़द्र करेंगे यह मेरा विश्वास है क्योंकि इस उमंग में आपके लिए एक संदेश है, एक तरह की तपिश है जो भावनाओं को गरमा देगी और शरारतें भी हैं जो आपको गुदगुदाये बिना न छोड़ेंगी।

कल्पनाओं और भावनाओं को प्रस्तुत करते समय मैंने कभी सचाई का दामन नहीं छोड़ा और इसीलिए तो दावा है कि मेरी साफ़गोई और सचाई की क़ीमत आप अपने प्रेम के रूप में अवश्य देंगे। बस ! मेरी पीठ थपथपा कर आप एक बार कह दें—'तुम बढ़ो। हम साथ हैं।'

मैं उन सब जाने-अनजाने मित्रों और अभिभावकों का आभारी हूँ जिन्होंने किसी न किसी रूप में यह पुस्तक प्रकाशित करने में मेरी सहायता की है।

पुस्तक जल्दी में छपी है इसलिए कुछ अशुद्धियाँ हों तो कृपया सुधार कर पढ़ें।

अँगरेज़ी कविताओं का निम्नलिखित उद्धरण यों पढ़ें—

I am monarch of all I survey (पृ० १९४)

और

Better dwell in the midst of alarms (पृ० १२०)

केदारनाथ रोड,
मुज़फ़्फ़रपुर
१—८—५२

हरीश जायसवाल

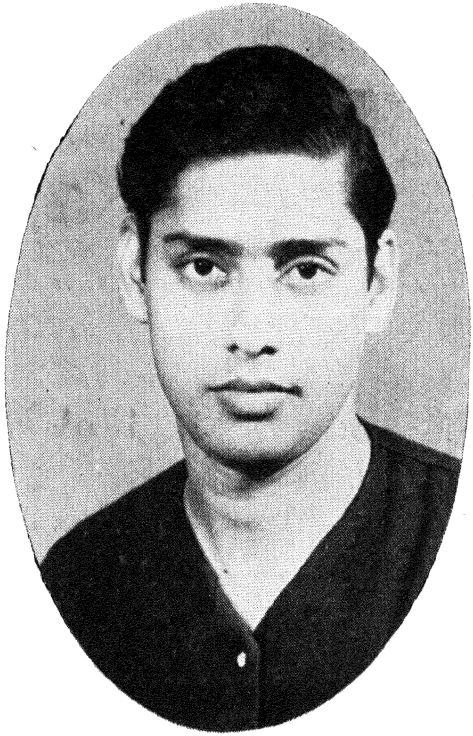

लेखक

— पत्तियाँ —

एक	वे आँखें
ग्यारह	ठंडी चाय
सताइस	राजो
सैंतीस	काली शिरवानी
पैंतालिस	अगस्त हँस रहा है
छप्पन	लाल गुब्बारे
बासठ	मेम साहब
पचहत्तर	फिर बिजली कड़की
अस्सी	सेल्यूलाइड की गुड़िया
नब्बे	थूक और खून
अन्ठानवे	शैतान जाग उठा
एक सौ चार	मेड इन इंगलैंड
एक सौ तेरह	डायरी से

वे आँखें

वह झाड़ू लगा रहा था एक छोटे सुन्दर मकान के सहन पर। उसके विचार चिकने रंगीन सेहन की सतह पर फिसल रहे थे। दाहिने हाथ से झाड़ू चला रहा था और बाएँ से उन शोख लटों को ऊपर फेंक रहा था, जो उसके चौड़े भाल पर आजातीं। वह झुँझला उठता, उसकी झुँझलाहट और बढ़ जाती जब अपने नौकर के बारे में सोचता। वह बड़बड़ा रहा था—"यह नौकर क्या हुए आकाश के लाल हो गए। क्या मजाल कि अच्छी तरह एक महीना भी रह जाएँ।" उसकी कलाई में दर्द हो गया। उसने अनुभव किया कि कमर टूट जाएगी। वह झाड़ू अलग फेंक कर उठ खड़ा हुआ। उसने जोर से अँगड़ाई ली और उसका जोड़-जोड़ कड़कड़ा उठा—"क्या इस मुहल्ले में कोई मुकेश बाबू रहते हैं?" उसने एकाएक पीछे मुड़कर

मेरी डार्लिंग—

देखा और देखता रह गया। क्या वह झाड़ू नीले विस्तृत आकाश पर लगा रहा था? जभी तो यह चाँद उसके पास ही निकल आया है। लम्बा क़द, भरा-भरा बदन, शलवार, क़मीज़ और दुपट्टे में वह कितनी सुन्दर लग रही थी और वह देखता रह गया उसकी आँखों को। उसने अनुभव किया कि वह उसकी काली काली आँखों में समा गया और बढ़ता जा रहा है, यहाँ तक कि वह कालिमा विलीन होगई और वह चाँदनी की शीतल किरणों में नहाता दूर चला जा रहा है। उसकी बड़ी बड़ी आँखें, कुछ झुकी-झुकी-सी, कुछ उठी-उठी-सी, शर्मीली और लजीली सी। "जी.....मैंने पूछा कि.....।" उसने मुस्कुराते हुए पूछा। वह मुस्कान मर्म स्पर्शी से अधिक बेबस थी। बीच में बात काटते हुए उसने कहा—"जी हाँ, मैं मुकेश बाबू से परिचित हूँ, जिन्हें आप ढूँढ़ती हैं.....माफ कीजिएगा, कौन से मुकेश बाबू?" और वह झेंप गया। वह अपनी मूर्खता पर बहुत ज़ोर से हँसना चाहता था। इतने ज़ोर से ठहाका लगाना चाहता था कि लड़की सहम जाए और न समझ सके कि वह मूर्ख है—"वही जो एक सुविख्यात लेखक और नाटककार हैं।" लड़की ने कहा—"उनका यही मकान है। आइए ड्राइंग-रूम में बैठिए, मैं उन्हें अभी बुला देता हूँ।" लड़की ड्राइंग रूम की ओर चली और साथ-साथ हाथ में झाड़ू लिए वह भी चला। मालूम होता था कि झाड़ू-तारा चाँद का पीछा कर रहा है और चाँद भागा जा रहा है। वह एक रंगीन मुलायम गद्देदार सोफ़े में धँस गई और वह कमरे में चला गया। लड़की कुछ गुनगुना रही थी और साथ साथ टेबुल पर पतली लम्बी रंगीन उंगलियाँ उस

गुनगुनाहट के स्वर में स्वर मिला रही थीं। वह उँगलियाँ दौड़ रही थीं उस टेबुल पर, जैसे एक सोसायटी-गर्ल की नेल-पेन्ट से रंगीन उँगलियाँ प्यानों पर तीव्र-गति से चल रही हों।

थोड़ी देर पश्चात वह कमरे से निकला और ड्राइंग-रूम में झूमता-झामता आया। वह लड़की खड़ी हो गई। उसके होठ हिले—"मैं ही मुकेश बाबू हूँ। घबराइए नहीं, बैठिए! नौकर परसों भाग गया है और बहुत से काम मुझे स्वयं करने पड़ते हैं। कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? मेरे पास समय कम है। आपसे बातें करके जाऊँगा और चाय की उन कुछ प्यालियों को साफ़ करूँगा, जिनमें पिछली रात मेरे कुछ मित्रों और सम्पादकों ने चाय पी थी" प्रत्येक शब्द के साथ-साथ उसे सिरसे पैर तक देख देख कर बोल गया। "मेरा नाम ललिता कौर है। मैं एक शरनार्थी हूँ। सब-कुछ पंजाब में गँवा चुकी हूँ। केवल जान और इज्जत बचाकर चली आई हूँ। मैं नौकरी चाहती हूँ और आपके पास इसकी आशा लेकर आई हूँ।" उसकी आवाज भर्रा गई। मुकेश की आँखें कुछ देर के लिए छत पर टँगी रहीं। वह बोला—"ओ, तो आप नौकरी चाहती हैं और मेरे पास इसकी आशा लेकर आई हैं, लेकिन पहले ही कह देना अच्छा है कि मैं साफ़ बातें करता हूँ। मेरे मित्र कहते हैं कि यही मेरी दुर्बलता है और मैं सदा यही कहकर टाल देता हूँ कि दुर्बलता है अवश्य किन्तु ····· ओ, आप की यह बहुमूल्य पोशाक अर्थात् शलवार, कमीज़ और दुपट्टा बता रहा है कि आप नौकरी अच्छी तरह नहीं कर सकतीं और न आप इसलिए बनाई ही गई हैं। क्यों, क्या ख्याल है

आपका ?" वह चुप हो गया। उसकी दृष्टि उन्हीं झुकी-झुकी बड़ी-बड़ी-सी आँखों पर थीं। मोती के समान एक आँसू गिरकर ललिता कौर की कलाई की रंगीन चूड़ियों पर आ रहा। उसने सिर उठाया और आँखें भी उठीं। उसका सिर इतने धीरे से उठा जैसे मनों बोझ उसपर रख दिए गए हों। वह धीरे धीरे सहमे अन्दाज़ में बोली—"मुकेश बाबू ! प्रत्येक वस्तु अपने स्थान ही पर शोभा देती है। यह सुन्दर बहुमूल्य वस्त्र जो इस समय मैंने पहन रखा है, मेरी दृष्टि में अब कुछ भी मूल्य नहीं रखता। बाध्य होकर मुझको इसे पहनना पड़ा है। मुझ अभागिन के लिए वह सोने के तारों से बने रेशम के कपड़े हों या एक फटी पुरानी गुदड़ी सब बराबर है।" और वह आशा भरी निगाह से मुकेश की ओर देखने लगी। उसकी आँखें मुकेश के चेहरे पर जमी थीं, उस किसान के समान जो आकाश की ओर देख रहा हो और प्रत्येक क्षण यह आस लगाए हो कि अब वर्षा होगी और उसके खेतों में हरियाली छा जाएगी। उस समय ललिता कौर की आँखें ऐसी मालूम होती थीं जैसे संगमरमर की हैं, जिनमें केवल सुन्दरता है, गति नहीं; जिनमें रंगीनी है, हरारत नहीं। फिर मुकेश बोला—"आपके विचार तो बड़े ऊँचे मालूम होते हैं, तो ठीक है कल से आप मेरे दफ्तर में काम शुरू कर दीजिए। वहाँ दो तीन लड़कियाँ और काम करती हैं। उनके साथ रहकर आपका ग़म भी बहलेगा, क्या ·····।" बीच ही में ललिता बोल उठी—"क्षमा कीजिएगा, मैं फिर पशुओं के बीच नहीं जाना चाहती। मुझे मनुष्यों से घृणा है ·· ·····" इसी बीच घबड़ाहट में मुकेश के मुँह से निकल गया—

"अजीब बात है। तो क्या मैं मनुष्य नहीं ....." "..... जी नहीं, मैं अकेली रहना चाहती हूँ।" यों ललिता ने अपनी बात पूरी कर दी। "अच्छा, जैसी आपकी इच्छा। परसों सुबह से आप मेरे घर ही पर काम करें"—मुकेश ने जलते सिगरेट को फिर से जलाने का प्रयास करते हुए कहा, किन्तु दूसरे ही क्षण मुस्कुरा कर उसने जलती सलाई की तिल्ली को ऐश ट्रे में रख दिया।

"आईए, क्षमा करना मैं फिर भूल गया, आओ। मैं तुम्हें अपनी छोटी दुनिया से परिचित करा दूँ। मैं पहले वह कमरा तुम्हें दिखा दूँ जो मेरे जीवन में और मेरे कार्य कलापों में घुलमिल गया है, जिसकी एक एक ईंट से मेरी कहानियों की नींव पड़ी है। जिसकी दीवारों के रंग मेरे रूपकों में सिमिट कर इकट्ठे होगए हैं और जिसके मूक वातावरण ने सदा मेरे सिर पर ममता का आँचल फैलाए रखा हैं।" वे दोनों एक के बाद दूसरे कमरे को तय करते हुए एक बड़े हॉल में पहुँच गए। वह द्वार पर ही ठिठक कर खड़ी हो गई और सामने दीवार पर आँखें रुक गईं। हृदय का स्पन्दन तीव्र से तीव्रतर होता गया। उसके पैर लड़खड़ाने लगे। माथे पर नन्हीं-नन्हीं बूँदें चमकने लगीं। सारा का सारा हॉल कुछ अजीब अस्त व्यस्त रूप में पड़ा था। जहाँ तहाँ मकड़ी ने जाल बुन रखा था और चमगादड़ अपने पर फड़फड़ा कर इधर से उधर भागने लगे, जैसे सैकड़ों वर्ष बाद फिर किसी को वहाँ आते देख वे भयातुर हो गए हों। जहाँ-तहाँ दीवार की सफेदी कुछ इस प्रकार झड़ गई थी कि लगता था भयानक मुखाकृतियाँ रेखाओं में खिंच गई हों। वह भाग जाना चाहती थी,

किन्तु किसी अज्ञात शक्ति ने उसे जंजीर से जकड़ रखा था। वह आँखें नीची करना चाहती थी, लेकिन पलकें थीं कि ऊपर ही उठी रहीं। मुकेश बोला—"आओ, घबड़ाने की क्या बात है। यह तो केवल दो आँखें हैं। एक में जीवन और दूसरी में मृत्यु, किन्तु इन दोनों को मैंने अपनी कला में एक कर दिया है।" उस हॉल की भीतरी दीवार पर उन्हीं रेखाकृतियों के बीच एक बड़ा चित्र था, जिसमें केवल दो आँखें थीं—बड़ी-बड़ी, सुन्दर आँखें और कुछ नहीं। ऐसा प्रतीत होता था कि केवल उन आँखों को छोड़ कर चित्र के शेष भाग को दीपकों ने चाट लिया हो। उसी चित्र के समीप दीवार पर लिखा था—"यह उसी झनकार के नयन हैं, जो कभी किसी की लम्बी-नुकीली उँगलियों द्वारा मेरी मन-वीणा से जगी थीं।" अनायास ललिता के मुख से निकला—"यह तो मेरी ही आँखें ..." बीच ही में मुकेश बोला—"हां! वह उस आकाश की देवी की आँखें हैं, जिसकी पूजा करने का सौभाग्य तो मुझे नहीं हुआ, फिर भी मेरे जीवन पर एक गहरी छाप छोड़ गई हैं। जब इनमें आंसू भर आते तब मेरी कथाएँ एक ऐसे संगीत का रूप धारण कर लेतीं जिसे सुन कर करूणा का संचार तो हो जाता किन्तु आँखें सूखी ही रह जातीं।" वह एक ठंडी साँस लेकर उलटे पाँव लौट गया।

शेल्फ से पुस्तकें निकाल निकाल कर ललिता झार रही थी और सुन्दर जिल्द वाली तुस्तकों को तो उलट पुलट कर भी देख लेती। खड़ी खड़ी वह एक पत्रिका के पन्नों को उलट रही थी। "क्या पढ़ रही हो, ललिता?" सामने मुकेश खड़ा था। वह घबड़ा कर बोली—

"जी, कुछ नहीं। एक कहानी थी उसे ही पढ़ रही थी, जिसका शीर्षक था—धुँधली आँखें।" मुकेश की होठों पर हँसी खिल गई और वह बोला—"आओ, मेरे साथ। मैं तुम्हें आँखों की प्रदर्शनी दिखाता हूँ।" मुकेश दूसरे शेल्फ के नजदीक गया और कहानी संग्रहों और पुस्तकों को निकाल निकाल दिखाने लगा—"यह देखो अब्बास हुसैनी साहब, एम० ए० की लिखी कहानी, अलेक्जेंडर कुप्रीन की कथा—*A p.i · of blu eeyes*' और यह काले रंग का उपन्यास जो तुम देख रही हो इसका नाम है "मादक आँखें।" ललिता घबड़ा गई। उसने अनुभव किया कि वह सहस्रों आँखों के बीच कैद हो गई हो और वह सशरीर आँखें बन गई। दूसरे क्षण उसके सम्मुख वही दोनों आँखें नाचने लगीं।

इस प्रकार मुकेश के यहाँ ललिता के दिन बीतने लगे। उसने अपने जीवन का सार मुकेश पर आरोपित कर दिया। किन्तु वह देखती मुकेश बिल्कुल चुप था। बिल्कुल अलग अलग रहता था। आखिर क्यों! क्या भूल हुई है उससे? क्या वह सुन्दर नहीं? यदि सुन्दर है तो क्या नारी नहीं? और नारी भी है तो क्या उसमें यौवन नहीं! यदि मुकेश को ललिता से प्यार नहीं तो उससे घृणा भी तो नहीं है। क्यों वह आँखें चुराकर उसे देखता रहता है और जब आँखें चार होती हैं तो वह आँखें चुरा लेता है और देखता भी है तो केवल आँखें ही को क्यों!

एक प्रातः काल ललिता कमरे में बैठी रेडियो सुन रही थी। उसकी आँखें ऊपर उठी और उसने देखा मुकेश उसका चेहरा आइने

मेरी डार्लिंग—

में देख रहा था। उसका मन-मोर नाच उठा। वह आइने में मुकेश का मुखड़ा देखती रही और मुकेश उसका। ललिता ने अपने मन से पूछा—"क्या वह मुझे प्यार करते हैं? तब तो वह मेरे दिल की बस्ती बसाएँगे ही।" वह आइने को अपने हृदय में रख लेना चाहती, उसे अपनी मखमली गोद में सुला देना चाहती थी। उसके मुँह से अनायास निकल गया—"मेरा मुकेश।" और मुकेश चिल्ला उठा—"ललिता।" वह क्रोध में बड़बड़ाता कमरे से बाहर चला गया और सीधे उस हाल के द्वार पर पहुँच कर रुक गया, जहाँ वही दो आँखे उसी प्रकार उसे अब भी देख रही थी। धीरे धीरे उन आँखों के समीप पहुँचा और चिल्लाया—'माँ'। दूसरे ही क्षण उसे लगा कि वे आँखें बोल रही हैं—"बेटा! मैं तो सदा तुम्हारे साथ ही हूं फिर हताश क्यों होते हो। मैं तो तब भी तुम्हारे साथ थी, अब भी तुम्हारे साथ हू और जब तक तुम हो और तुम्हारा जीवन है, मेरा प्यार सदा तुम्हें सहारा देता रहेगा; क्योंकि मै यह भी जानती हू कि तुम्हारा मुझ पर कितना अगाध स्नेह है और मुझे विश्वास भी है कि समय आने पर तुम मेरे लिये अपने प्राणों की बाजी भी लगा सकते हो" और वह आँखें चुप हो गईं। मुकेश ने अनुभव किया कि उसमें एक नवीन स्फूर्ति आ गई हो और उसका चेहरा पूर्ववत खिल उठा। हॉल के द्वार पर खड़ी ललिता चुपचाप यह सभी बाते देख रही थी और मुकेश के लौटने के पहले ही वह वहाँ से चल दी।

चाँदनी रात थी। ललिता अपने घर की छत पर सो रही थी और समीप ही उसके पिता सो रहे थे। आधी रात बीत चुकी थी,

किन्तु उसकी आँखों में नींद कहाँ। चाँद की रजत किरणें उसे और तड़पा रही थीं। आज प्रातः काल की बातों का स्मरण कर मुख पर मृत्यु की छाया छा जाती और कभी गुलाब की तरह उसके गाल खिल भी उठते। यदि मुकेश मुझसे प्रेम करता है तो यह बेरुखी क्यों? क्या बेरुखी की आड़ में प्रेम को और भी परख रहे हैं वह? वह करवट पर करवट बदल रही थी। चंदा की चाँदनी उसे काँटों-सी चुभ रही थी। हवा के नर्म झोंके उसके रोंगटे खड़े कर देते और कुछ देर के लिए एक अनजान मिठास का अनुभव करती हुई एक लम्बी जँभाई लेती। वह आशाओं के झूले में झूल रही थी। वह चुपके-से अपने बिछावन से उठी। इधर-उधर देखा। सब सो रहे थे और वृद्ध पिता खर्राटे भर रहा था। वह चली, किन्तु अकेली न थी। उसके साथ मुकेश की याद भी थी और.....। मुकेश गहरी नींद में था और आँखें मुस्कुरा रही थीं। संभवतः कोई सुन्दर सपना देख रहा हो। पास ही ललिता खड़ी थी। वह अपलक नेत्रों से मुकेश को देख रही थी। उसके हृदय में एक हिलोर, एक तरंग उठ रही थी..... ....वह झुकी, झुकती गई। नदी की लहरें चली आ रही थीं किनारा चूमने। तभी एक तीव्र स्वर ने उसे चौंका दिया—"ललिता! यह क्या कर रही हो" द्वार पर खड़ा ललिता का पिता क्रोध और आवेश में कड़क कर बोला। मुकेश एकाएक चौंक कर बिछावन से उठ बैठा और परिस्थिति समझने के पहले ही घबड़ाहट में उसने सिरहाने से निकाल कर पिस्तौल हाथ में ले लिया। ललिता के पिता ने एकाएक झपट कर मुकेश के हाथ से पिस्तौल छीन लिया

मेरी डार्लिंग—

और उसका मुँह ललिता की ओर करके बोला—"ललिता, मैं सब-कुछ सुन चुका हूँ। तू मेरी बेटी नहीं, कलंकिनी है और इसीलिए तुझे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं।" धमाके की आवाज़ हुई। सारा हॉल धुएँ से अंधकारमय हो गया और फर्श पर मुकेश तड़प रहा था। यह सब इतनी शीघ्रता से हो गया कि ललिता कुछ न समझ सकी। वह फूट-फूट कर रोने लगी, सामने उसका अपराधी पिता अवाक् खड़ा था। ललिता ने खून से लथपथ मुकेश का सिर अपनी जाँघ पर रख लिया और रोती हुई बोली—"यह क्या किया तुमने, मुकेश।" दूसरे ही क्षण मुकेश की चेतना लौटी। एक हाथ से वह कलेजा दाब कर फीकी हँसी हँसते हुए बोला—"रो नहीं, यह तो हँसने का समय है। एक दिन इन्हीं आँखों ने कहा था कि समय आने पर मैं उसके लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा सकता हूँ और आज सचमुच उसी के प्रतिरूप की रक्षा ····· आह।" ललिता रोती हुई बोली—"तो क्या मुझे ही तुमने अपनी माँ ·····" बीच ही में मुकेश फिर बोला—"और इन आँखों ने उस दिन कहा था कि जबतक मैं हूँ तभी तक ये भी हैं और सचमुच वे आँखें भी मेरे साथ विलीन होती जा रही हैं। देखो, देखो; माँ! वे आँखें सचमुच धुँधली पड़ती जा रही हैं, विलीन होती जा रही हैं और अब लगता है कि सचमुच मेरी माँ मुझे मिल·····अरे, तुम अब भी रो·····आह।" उसका निष्प्राण सिर ललिता की गोद में झूल गया और ललिता की गीली आँखें मुकेश पर अब भी गड़ी थीं।

★

ठंडी चाय

ऊँची ऊँची पहाड़ियों की क़तारें नीची नीची जानेवाली नदियों के कज्जल जल पर धीरे-धीरे नृत्य कर रही हैं। काश! यह पानी न होता और इन क़तारों को अपनी परछाँई न दिखती तो क्या फिर भी ये इसी तरह नाचतीं? नहीं! नहीं नाचतीं!! लेकिन पुष्पा तो अब भी नाच रही है। उसकी पुतलियाँ नाच रही हैं और पहाड़ी हवा से उसके रेशम जैसे मुलायम बाल भी तो नाच रहे हैं। इस वक्त उसका राजन नहीं है। राजन की सुन्दर आँखें भी तो नहीं हैं, जिनमें अपनी अल्हड़ अँगड़ाई और बाँकपन देख रही हो। फिर भी वह नाचे जा रही है जैसे उसके पैर मुहीत पर घूमनेवाली दुनिया की चाल से बाज़ी मार लेना चाहते हों। पगली! इतना न नाच कि चक्कर आ जाए, इतना खुश न हो कि रोना भारी पड़े। लेकिन भरी जवानी फानी

मेरी डार्लिंग—

दुनिया के कटु अनुभवों की कहानी सुनने का मौक़ा कब देती है! शराब में नशा और शबाब में खुदफ़रामोशी न हो, क्या यह मुमकिन है?

"बहूरानी! चाय ठंढी हो रही है।" और उसकी उमंगें ठंढी पड़ गईं। वह कोच पर धम्म से आ रही। नौकरानी पर बिगड़ पड़ी—"तुम्हें लाख बार समझाया कि मत कहा करो चाय ठंढी हो रही है। लेकिन तू है कि ....." और उसकी आँखें छलछला आईं। उसने देखा सामने फैले मैदान में भेड़ों के झुण्ड के पीछे पीछे एक पहाड़ी छोकरा बाँसुरी बजाता जा रहा है। वह देखती रही, देखती रही; यहाँ तक कि क्षितिज ने उन्हें निगल लिया। इस क्रूर क्षितिज ने कितनों को निगल लिया है—"क्यों पुष्पा! अभी तक चाय नहीं पी?" राजन आते आते बोला—"भला आपके बग़ैर मैं क्योंकर पी सकती हूँ!" राजन उसकी ठोढ़ी पकड़ आँखों में आँखें डाल प्रेम से बोला—"और यह चाय जो ठंढी हो रही है।" पुष्पा की भँवें तन गईं और माथे पर बल पड़ गए। वह कड़की—"आप भी.....। दुनिया क्यों मेरे पीछे पड़ी है, मैंने उसका क्या बिगाड़ा है?" राजन सकपकाया, "आखिर तुम्हें हो क्या गया है? क्या फ़िज़ूल बातें बक रही हो?" पुष्पा मुस्कुराकर बोली—"आख़िर फिलासफर की पत्नी जो हूँ।" और दोनों की हँसी से पहाड़ी गूँज उठी।

चाय में चीनी डालती हुई पुष्पा बोली—"क्या मेरी एक ख़ाहिश पूरी करेंगे आप?"—राजन ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"सच पूछो तो कोई किसी की ख़ाहिश पूरी नहीं करता। हाँ! पूरी करता है तो

उसकी प्रार्थना—और उसके लिए मैं तैयार हूँ।" पुष्पा कुछ सोचकर बोली—"आपकी बहुत-सी कहानियाँ पढ़ी हैं। उनकी धड़कनों में अपनी हरकत देखी है और उसमें फैली हुई आहों की झलक अपने आँसुओं में पाई है। सारा देश आपकी कहानियों का लोहा मानता है। आपके कलम में ज़ोर है और सुनती हूँ, गले में लोच भी कुछ कम नहीं; पर सुना नहीं। मुझे अपनी एक कहानी सुनाइए न!"

राजन मुँह में इलायची रखता हुआ बोला—"बस इतनी सी बात और इतनी लम्बी भूमिका। लो सुनो! आज एक बहुत बड़े कथाकार की प्रेम कहानी ....." बीच ही में पुष्पा बोल उठी—"तो क्या आपके कथाकार भी किसी से मुहब्बत ....." राजन ने बात काटते हुए कहा—"हाँ, पुष्पा! कौन सोना तपाया नहीं जाता। यह सुन्दर हार जो आज तुम्हारे गले में दमक रहा है; जानती हो, इसने अपनी दमक आग में गल गल कर पाई है और इसी तरह उसने भी अपनी ख्याति किसी की नाकामयाब मुहब्बत की जलन में जल-जल कर पाई है। यह कहानी सुनकर तुम्हारी आँखें भर आएँगी। कभी चौंक उठोगी और कभी हँसते-हँसते पेट में बल भी पड़ जाएँगे।"—"इसी में तो कथाकार की सफलता निहित है।" पुष्पा दाँतों से साड़ी का आँचल पकड़ती हुई बोली।

"हाँ! तो उन दिनों हरीश के सिर पर अफ़सानानिगारी का भूत सवार था। उठते बैठते, खाते पीते वह सदा अपने को देश का ख्यातिप्राप्त कथाकार ठहराता था। एक दिन की बात है, सुबह का वक्त था, ठंडी हवा चल रही थी और वह आरामकुर्सी पर बैठा सोच

रहा था—'मैं एक बहुत बड़ी सभा का सभापति हूँ। हज़ारों लोग मेरा भाषण सुनने को इकट्ठे हैं। सैकड़ों फूलों की मालाएँ मेरे गले में पड़ी हैं।' उसने इत्मीनान से एक भारी गजरा अपने गले से निकाल कर टेबुल पर रख दिया और जनता का अभिवादन कर बोलने लगा। एकाएक उसके कानों में माँ की आवाज़ आई—'हरीश! अब कहीं चरने गई है क्या!' वह तो आसमान से गिर पड़ा। सामने टेबुल पर टी-ट्रे में उसका गुलबन्द पड़ा था।"

पुष्पा खूब हँसी। राजन की आँखें उसके लाल कपोलों पर अटक गईं। ठीक नहीं कहा जा सकता कि पुष्पा के गालों पर लालिमा हँसने या सूर्य की पहली किरण के कारण आई थी।

"हरीश सचमुच पागल हो गया था। जहाँ भी नये विचार दिमाग़ में आते, वह झट किसी काग़ज़ पर नोट कर लिया करता और कहानी की बातें सोचने लगता। एक दिन वह काग़ज़ क़लम लिए बैठा था और उसके पिता उससे एक पत्र लिखवा रहे थे। पत्र समाप्त होने पर उन्होंने पढ़ने के लिए माँगा, लिखा था 'माता जी, प्रणाम!—कल मालूम हुआ कि आप मुझे बहुत याद कर रही हैं। मैं जल्द ही आऊँगा और जो भी सेवा मेरे लायक होगी, उठा न रखूँगा। आपके गोरे गोरे गाल अभी तक नहीं भुला पाया हूँ। आपकी मदभरी आँखें जैसे मुझे बुला रही हैं। मैं खर्च के लिए छै सौ रुपये मुनीम जी की मार्फत भेज रहा हूँ.....' और तब उसके पिता बिगड़ उठे थे—'होश में तो हो हरीश! तुमने ये क्या वाहियात बातें लिख दीं! काटो इन्हें।' अब काटो तो बदन में ख़ून नहीं और उसका सिर शर्म से झुक गया था।"

इस बार तो पुष्पा ने हँसी से सारा कमरा सर पर उठा लिया। सचमुच राजन कहानी कहना भी जानता है।

"अब भूत तो उतर गया, लेकिन जादू तब भी सर पर बोल रहा था। एक दिन पार्क की शाम बहुत ठंडी थी या यों कहो रात उतर रही थी। वह एक बेंच पर बैठा था। एकाएक एक रंगीन प्लाट उसके दिमाग़ में आया और उसी वक्त सिनेमा के पर्चे पर लिखने लगा। लेकिन बुरा हो फाउन्टेन पेन का। थोड़ी ही देर बाद उसने जवाब दे दिया। इधर उधर नज़र दौड़ाई, लेकिन बूढ़े माली के सिवा कोई नज़र न आया। दूसरे क्षण उसकी खोज-भरी दृष्टि एक सुन्दर युवती पर गई जो धीरे-धीरे उसी ओर आ रही थी। पास आने पर लड़की के रंगीन ब्लाउज़ में एक फाउन्टेन पेन उसने देखा। वह खुशी से उछल पड़ा और समीप जाकर दो घड़ी के लिए पेन मांगा। लड़की साफ इनकार कर गई। हरीश ने झट उसके ब्लाउज़ से पेन खींच लिया। उसकी उँगलियाँ गर्दन से छू गईं और वह सिहर उठी। अपनी बदतमीज़ी पर कुछ भी शर्माए बगैर वह फिर लिखने लगा। चंद मिन्टों बाद वह समीप जाकर बोला—'देवी जी! मुझसे बड़ी भूल हुई, क्षमा कर दीजिए।' और उसने पेन उसकी ओर बढ़ा दिया। लेकिन वह तो बिल्कुल संगमरमर की मूर्ति बन चुकी थी, केवल आँखें हरीश पर केन्द्रित थीं। आश्चर्य की बात थी कि उसकी आँखों में गुस्से की जगह हमदर्दी थी। सम्भवतः उसका यह मौन आने वाली आँधी का सूचक था और इसी कारण उसने अपना दिल इतना मज़बूत कर लिया था कि तूफ़ान के कुछ थपेड़ों को सह सके। वह हरीश पर

क्यों नहीं बिगड़ रही थी ? वह उसे गालियाँ देने में क्यों देर कर रही थी ? हरीश ने अनुभव किया, वह कह रही थी—'आवारा, बदमाश, अकेलेपन से फ़ायदा उठाना चाहता है। शायद तू मेरे तमाचे से परिचित नहीं। गुण्डा कहीं का।' और लड़की ने थप्पड़ जड़ दिया। उसका हाथ झट गाल पर गया। हरीश ने सिर उठा कर देखा। वह वैसे ही मूर्तिवत खड़ी थी और उसके दोनों हाथ चेष्टर की जेबों में थे। वह उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में खो गया था। उसकी पुतलियों में हरीश अपने चेहरे को साफ देख रहा था। उस समय भी उसका हाथ दाहिने गाल पर था, लेकिन उसके दोनों हाथ तो नीचे लटके थे। वह पसीना पसीना हो गया और ज़ोर से लड़की को झकझोर कर बोला—'आपके शरीर में हरकत क्यों नहीं ? कुछ तो बोलिए वर्ना मैं पागल हो जाऊँगा।'—'आप घबड़ा गए हैं। पेन जहाँ से लिया था वहीं लगा दीजिए। मुझे आपकी धृष्टता पर नाज है, लेकिन डरती हूँ यह नाज मुझे तिलतिल मरने पर मजबूर न कर दे।' थरथराते हाथ से उसने पेन लड़की के ब्लाउज में लगा दिया। वह अब भी वैसी ही चुपचाप खड़ी थी। वह उसके लिये एक पहेली बनकर रह गई। उसने अनुभव किया कि वह अप्सरा बनकर उसके हृदय में उतर गई है, लेकिन दूसरे क्षण वह एक बहुत बड़े प्रश्न-सूचक चिन्ह में बदल गई। हरीश डपटकर बोला—'आप जातीं क्यों नहीं ?' लड़की ने एक भरपूर आकर्षक दृष्टि उसपर डाल कर लम्बी साँस छोड़ दी और सुन्दर बड़ी-बड़ी कजरारी आँखों से दो बूँद आँसू ढुलक गए और वह चुपचाप वहाँ से चल दी।

दूसरे दिन हरीश ने शहर का चप्पा चप्पा छान डाला, लेकिन उस रहस्यमयी युवती का कहीं भी पता न चला। अब वह खुद एक कहानी बन गया और उससे सैकड़ों कहानियों के प्लाट लिए जा सकते थे।

उसके दो बूँद आँसुओं का मूल्य वह जीवन भर रोकर अदा करना चाहता था। उसने यह क्यों कहा था कि उसका नाज़ उसे तिल तिल मरने पर मजबूर कर देगा। वह हमेशा यही सोचता रहता। सर चकराने लगता और मालूम ऐसा होता जैसे वह बहुत कमज़ोर हो गया हो। शरीर की सारी शक्ति ने जैसे जवाब दे दिया हो। वह मौत की गुत्थियों से भी ज्यादा उलझी हुई थी। आशा और निराशा के बीच की कड़ी के समान उसकी याद मज़बूत थी जो उसके दिल और दिमाग़ को झकझोर रही थी। वह सिर्फ उन कड़ियों की झन-झनाहट को सुन पाता था, लेकिन उसकी बेबसी थी वह उसे देख नहीं रहा था। इन्सान जिसे सुनता है उसे यदि देख ले तो देखने वाली चीज़ की कोई क़ीमत ही न रह जाय। नूपुर की झंकार हम केवल सुन सकते हैं, इसलिए नर्तकी के सुन्दर पैरों की थिरकनों को देखकर उनकी सुन्दरता में खो जाते हैं। यदि वह झंकार देख पाते तो उसकी थिरकनों को शायद न सराहते। चूड़ियों की खनखनाहट हम केवल सुनते हैं, यदि उसे देख पाते तो गोरी सुडौल कलाइयों की प्रशंसा करने की फ़ुर्सत हमें न होती। हरीश भी प्रकृति की इस कटु नीति के पंजे में आ ही गया। आज भी युवती के स्वर उसके कानों में गूँज रहे थे, किन्तु उसे देखने से मजबूर था।

मेरी डार्लिंग—

अभी वह नाश्ते के बाद अखबार पढ़ने ही लगा था कि आया ने उसे एक तार दिया। उसका दिल धक से रह गया। काँपते हाथों से खोलकर पढ़ा—'कल शाम तक यहाँ पहुँच जाओ। डुएट गाना है—आल इण्डिया रेडियो।' वह खुशी से झूम गया। रुपये जो मिलने वाले थे। खुशी में ज्यादा वक्त बर्बाद करना मुनासिब न समझ अपना सामान बँधवाया, एक्सप्रेस पकड़ी और ठीक वक्त पर रेडियो स्टेशन जा पहुँचा। कुछ देर बाद उसकी पार्टनर विमला वर्मा आई और सामने कुर्सी पर बैठ गई। उससे बातें होने लगीं। इसी बीच म्यूजिक डाइरेक्टर आया। रिहर्सल शुरू हुआ। वह तो इसमें सफल हो गया, किन्तु विमला गले की खराबी के कारण अच्छी तरह गा न सकी। दो घन्टों के लगातार परिश्रम से ऊब कर म्यूज़िक डाइरेक्टर झुँझलाता हुआ दूसरी ओर चला गया और चन्द मिनटों में एक लड़की के साथ लौटा। लेकिन यह क्या। यह तो वही रहस्यमयी लड़की थी। वह दंग रह गया। उसकी आँखों के सामने समुन्दर हिलोरें ले रहा था, फिर भी उसका दामन सूखा ही था। कौन सी वह ताक़त थी जिसने उसकी जबान पर ताला लगा दिया था। लेकिन वह ताक़त उससे अधिक देर तक छुपी न रही। वह उसकी ओर जो देख रही थी। फिर रिहर्सल शुरू हुआ और वे दोनों पूर्ण सफल हुए। वे दोनों स्टूडियो न० २ में दाखिल हुए। तबले की थाप से कमरा गूँज उठा और लड़की के आलाप से उसका दिल। क्लैरियोनेट मधुर स्वरों में गुनगुनाने लगा, जिसने उसके दिल में नश्तर चुभो दिए। इस हसीन नश्तर से घायल होकर वह तड़प उठा। अब वे दोनों गा रहे थे।

एक रंगीन समा बँध गया। जड़ वस्तुओं में भी चेतना भर गई। क्या बात थी कि तबले पर हाथ ज़ोर से पड़ने लगे। क्लैरियोनेट की आवाज़ और तेज़ हो गई और सितार के झाले पर वायलिन का स्वर तीखा-नुकीला हो गया; जो सुनने वालों के कानों में रस घोलने लगा था। उन दोनों की आवाज से सारा वातावरण झूम उठा और गीत की पिचकारियों ने आवाज़ की दुनिया को रंगीन बना दिया। हरीश गा रहा था और वह लड़की भी गा रही थी अर्थात् वे दोनों साथ गा रहे थे, माहौल पर छा रहे थे। एकाएक हरीश की नज़र उसकी नज़र से टकराई। उस वक्त वह उसे एक नज़र से देख रही थी। होंठ चल रहे थे पर आँखें रुकी थीं। उसके दिल की धड़कनें चल रही थीं और दिल ख़ामोश था। वह उसकी बड़ी बड़ी आँखों में खोया जा रहा था और गीत कमज़ोर पड़ता जा रहा था। एकाएक एनाउन्सर ने फेडर ऑफ़ कर दिया और म्युज़िक डाइरेक्टर बिगड़ कर बोला—'मिस गीता ! अपनी आखें नीची ही कर गाइये।' एनाउन्सर बोला—'क्षमा कीजिएगा, मशीन की ख़राबी के कारण आप एक मिनट तक गीत न सुन सके। लीजिए श्री हरीश और मिस गीता से गायत्री का एक गीत सुनिए। बोल है—'इन नील गगन सी आँखों से परदेशी आँसू झाँक रहे।'

फिर वे दोनों गाने लगे। इस बार संगीत में जलन तो थी, जीवन न था, लगन थी, ज़ोर न था। वे दोनों उस पुजारी की तरह थे जिसके सामने उसका देवता आ खड़ा हुआ है और उसके हाथ की घंटी की आवाज़ मद्धिम पड़ती गई है। अब वह क्यों घंटी बजाये।

क्यों उसके हाथों में ताक़त रहे। उसे तो अब उसका देवता मिल गया था। गाना ख़तम हुआ और वे कमरे से बाहर आये। लेकिन गीता केवल अर्थपूर्ण नेत्रों से हरीश को देखती रही। जैसे वह उसमें कुछ ढूँढ़ रही थी। कुछ क्षणों बाद उसका चेहरा उतर गया। वह जाने के लिए उठ खड़ी हुई और एक बार भरपूर नज़र से उसने उसको देखा। गीता की आँखें डबडबा आईं। 'हरीश बाबू! आपके लिए मैं अपने आँसुओं की एक माला बना रही हूँ। आप उसकी तैयारी में मदद करें।' वह उसका उत्तर सुने बिना वहाँ से चल दी। वह सोचने लगा—'उसने मुझे उत्तर देने का मौक़ा क्यों नहीं दिया? तो क्या गीता समझ चुकी है कि मैं उसकी माला की तैयारी में मदद दूँगा याने मैं कोशिश करूँगा कि उसकी आँखें हमेशा आँसुओं से तर रहें? लेकिन ऐसा कभी नहीं हो सकता। यदि उसने ऐसा सोचा है तो मुझपर अत्याचार कर रही है। वह मुझे पागल बना कर छोड़ेगी।' और वह सर थाम कर कुर्सी पर बैठ गया।"

राजन ने देखा, पुष्पा की आँखें भर आई हैं। पुष्पा ने दाँतों तले ज़ोर से होंठ दबा लिया, जैसे समुन्दर अपने में मौजों की तड़प दबा रहा हो। आँखों के इस दर्दनाक खेल में पुष्पा एक हारी हुई खिलाड़ी मालूम हो रही थी। वह महसूस कर रही थी कि गीता खड़ी है और हरीश से कह रही है, 'हरीश! क्या मैं तुमसे न मिल सकूँगी? मुझे यह कहाँ मालूम था कि अपनी याद देकर स्वयं सदा के लिए अपने को मुझसे दूर ले जाओगे।' राजन सिगरेट पी रहा है और आसमान की ओर सिगरेट से उठता हुआ धुआँ देख रहा है। वह मन ही मन

उन धुएँ की मूर्खता पर हँस रहा है जो बादल से मिलने की न पूरी होने वाली ख़ाहिश लिए ऊपर उठ रहे हैं। पुष्पा बोल उठी—'मैं मान गई। आपकी ज़बान में बहुत ताक़त है। आप रुक क्यों गए? कहिए न आगे?'

"हरीश एक कहानी लिखने लगा था। डाकिया डाक का पुलिन्दा टेबुल पर रख कर चला गया। जब वह कहानी की एक कठिन मोड़ पर पहुँचा तो उसका दिमाग़ बहुत थक चुका था। वह 'सारंग' को उलट-पुलट कर देखने लगा। उसकी दृष्टि उस पन्ने पर गई जहाँ बम्बई का प्रोग्राम छपा था। वह उसे पढ़ने लगा। उसकी घबड़ाहट की कोई हद न रही जब मिस गीता का नाम वहाँ देखा। उसने अपनी आँखें साफ़ कीं लेकिन फिर भी गीता ही का नाम नज़र आया। उसकी निगाहें कैलेण्डर पर गईं। अभी पाँच दिन बाक़ी थे। पूरे एक सौ बीस घंटे अर्थात् सात हजार दो सौ इन्तज़ार की घड़ियाँ कितनी लम्बी होती हैं। उसके दिल में एक तूफान मचा था और उसकी गति में भावनाएँ सूखी पत्तियों की तरह बिखर गई थीं। वह आकाश की ओर उस बालक के समान देख रहा था जिसे बताया गया हो कि आकाश से अभी एक रंगबिरंगी फुलझड़ी टूट कर गिरेगी। आँखें आसमान की नीलिमा में तैर रही थीं। एकाएक मुसाफिर को मंज़िल की रौशनी झलकने लगी। उसने उसी समय बम्बई जाकर गीता का घर पता लगाने की ठान ली।

ट्रेन आहिस्ता आहिस्ता चल रही थी या शायद गीता से मिलने की इच्छा की रफ्तार तेज़ थी। दिल में एक ही लगन थी और एक

ही ख़ाहिश कि वह गीता तक जल्द से जल्द पहुँच जाए। वह बहुत भोली थी किन्तु आँखें कितनी शरीर थीं, झिपकने का नाम ही न लेतीं। एक सुहागिन विधवा के हृदय की उस गहराई से जहाँ उसके अरमान सिसकते हैं और तमन्नाएँ आहें भरती हैं, वे आँखें कहीं अधिक गहरी और अर्थपूर्ण थीं। रात काफ़ी गुज़र चुकी थी। वह सोने की कोशिश कर रहा था, नहीं नींद को जगा रहा था। वह सो गया। सपने में देखा कि गीता उसके समीप बैठी उसके उलझे बालों में अपनी सुलझी अँगुलियाँ फेर रही थी। एकाएक कम्पार्टमेंट में एक भूत आया और गीता को खींचता हुआ उतरने की कोशिश करने लगा। रोती हुई गीता ने जाने से इनकार किया। हरीश ने इस भीमकाय मानव को एक तमाचा दे मारा, लेकिन दूसरे ही क्षण उसने उसे कोठरी से बाहर फेंक दिया। वह बुरी तरह ज़ख्मी हो गया। गीता की एक लम्बी चीख़ उसने सुनी और वहीं लाइन पर बेहोश हो गया। हरीश अस्पताल में लोहे के पलंग पर घायल पड़ा था। नर्स उसके सामने दवा लिए खड़ी थी और डाक्टरों को उसके होश आने की प्रतीक्षा थी। उसे होश आ गया था। डाक्टर अपनी सफलता पर हँसमुख चेहरा लिए लौट गए थे। केवल वही नर्स रह गई जो उसे दवा पीने को कह रही थी। हरीश के पूछने पर नर्स ने बताया कि उसकी ट्रेन उलट गई थी और सैकड़ों आदमी मर गए पर वह बच गया। उसके दिल को एक धक्का लगा और फिर बेहोश हो गया। दूसरे बार जब उसने चैन गँवा कर होश हासिल किया तो देखा नर्स उसी तरह उसे दवा पी लेने को कह रही थी।

'आज कौन तारीख़ है, नर्स !' हरीश ने पूछा ।

'सात तारीख़ है ।'

'सात तारीख़ है ! नहीं, नहीं, आज पाँच तारीख़ है। ज़रूर होगी। मैं वहाँ जाऊँगा। नर्स ! मैं कैलेण्डर देखना चाहता हूँ ।'

कैलेण्डर में हरीश ने देखा सात उसकी तरफ़ घूर रहा था। 'लेकिन आज ही सात क्यों ? तो क्या मैं उससे न मिल सकूँगा ? नहीं नर्स, डाक्टर कहाँ है ?' जब डाक्टर आया और उसने भी कहा कि सात ही तारीख़ है तो उसकी आँखों से बेबसी झलकने लगी। इन्सान भी एक तुच्छ निर्जीव अंक के हाथों लुट सकता है, एक छोटा-सा अंक '७' मानव की प्रसन्नता छीन कर निराशा की भट्ठी में पटक दे सकता है, हरीश मनुष्य की मजबूरियों से परिचित न था। वह सोच रहा था और दिल डूब रहा था, दिल डूब रहा था और ग़म उभर रहा था, वह फिर बेहोश हो गया। बहुत प्रयास करने पर पूरे चार घंटे बाद वह होश में आया। चिल्लाने लगा 'आठ बज गए। वह आ गई है। हाँ, वह गा रही है। मैं रेडियो सुनूँगा। हाँ, उसी की तो आवाज़ है ।' उसके सामने रेडियो लाया गया। एनाउन्सर ने कहा—"अभी आप घसीट खां से मियांकी टोडी सुन रहे थे। अब आप मिस गीता से कवि 'उदय' का गीत सुनिए। बोल है—'मैं भूल गया दुनिया सारी पर अपनी भूल न भूल सका" और सचमुच हरीश को अपनी भूल याद आ गई। वह अपने में एक नई ताकत महसूस करने लगा और तन कर बैठ गया। गीता कमरे में रस घोल रही थी।

कुछ दिनों से वह बेचैन था। उसकी ज़िन्दगी और मौत पर

मेरी डार्लिंग—

गीता का अस्तित्व दार्शनिक दृष्टि डाल रहा था। वह एक बेजान सी हस्ती होकर रह गया। रात के आठ बजे थे। लेकिन मालूम होता था जैसे आधी रात बीत चुकी है। न जाने क्यों वह रात मौत की सियाही लिए उम्मीद की किरणों की गोद में सो रही थी। उम्मीद की किरण और मौत की स्याही जब आपस में मिलती है तो इसी तरह वातावरण भयानक हो जाता है। उसी शाम को एक नौजवान मरीज़ आया था और हरीश के पलंग की बगल ही में उसका भी पलंग था। वह मरीज़ बहुत बेचैन था। उसकी कराह वार्ड की दर्दनाक फिज़ाँ में भटक रही थी। हरीश के सिरहाने नर्स बैठी टेम्परेचर-चार्ट पर कुछ लिखने लगी। हरीश ने उसका हाथ पकड़ कर कुर्सी पर बैठा दिया और बड़े ही मार्मिक ढंग से बोला—'नर्स! आज मेरा दिल डूबा जा रहा है। मैं अपनी आप बीती तुम्हें कह कर दिल हल्का करना चाहता हूँ। क्या तुम सुन सकोगी?'

नर्स ने सम्मतिसूचक सिर हिला दिया। हरीश ने अपनी सारी कहानी उस नर्स को सुना दी। पास वाले मरीज़ ने एक ग़मगीन करवट बदली। उस करवट में बेचैनी से ज्यादा बेबसी थी। शायद वह भी उस कहानी को सुन रहा था। आप बीती खत्म हो जाने पर नर्स ने दवा पी लेने को कहा, लेकिन हरीश मचल गया और दवा पीने से साफ़ इन्कार कर दिया। नर्स नाउम्मीद होकर वापस चली गई। लेकिन कुछ देर बाद उसने देखा गीता दवा का गिलास लिए नर्स के साथ उसी तरफ़ आ रही थी। वह दंग रह गया। उसकी आखें झुक गईं। गीता समीप आकर बोली—"हरीश बाबू! बच्चों-सी ज़िद

मुझे नहीं भाती। दवा क्यों नहीं पीते? पी लीजिए न!" हरीश इनकार न कर सका। क्या वह स्वप्न देख रहा था? क्या उसने स्वप्न में ही दवा अपने मुँह में उड़ेल ली थी? लेकिन नहीं। गीता तो उसके समीप बैठी थी। हरीश ने पूछा—"गीता देवी! मैंने सारी कहानी नर्स को सुना दी है। लेकिन आप क्या हैं यह अबतक मुझे मालूम न हो सका। नर्स भी बोली—हाँ, गीता देवी! आप कुछ कहिए न!" और तब मजबूरन गीता बोली—'हाँ, मैंने आज सब कुछ कह देने की ठान ली है। शायद फिर मौका न मिले। तो हरीश बाबू! मैं पार्क ही में आप पर अपना सब कुछ निछावर कर चुकी थी। आपका मेरे ब्लाउज से फाउन्टेन पेन खींच लेना और उस पर भी आपके चेहरे से कोई बदतमीजी और बुरी नीयत की निशानी न जाहिर होने पर हमेशा-हमेशा के लिए आपकी बेदाम गुलाम बन गई। मैं समझ गई थी कि आप-सा साफ दिल मनुष्य शायद ही मुझे मिले। जिस आग में लपट न हो वह आग मेरे लिए स्वर्ग की हो सकती है। लेकिन दूसरे ही क्षण मेरी आत्मा ने कहा कि आप कभी मेरे न हो सकेंगे, आत्मा ने झँकझोर-झँकझोर कर कहा कि हरीश को जमाने की गर्दिश मुझसे छीन लेगी और तब से मैं एक उलझन, एक कशमकश में गिरफ्तार हो गई। एक ओर मुझे आपसे मिलने की इच्छा होती और दूसरी ओर आत्मा की पुकार थी। मैंने अपना आँचल सदा बचाये रखना चाहा। कभी कभी हार भी जाती थी। मैंने रेडियो-स्टेशन पर अपनी पहली बाजी हारी और फिर आज। काश! मैं सब कुछ हार कर किसी को जीत पाती। हाँ! तो

आप चाय पी लीजिए, ठंढी हो रही है।' और तब बिगड़ कर हरीश बोला—'ठंढी होने दीजिये। मेरी ज़िन्दगी तो ठंढी नहीं हो रही है। आप अपनी बात जारी रखिए।'

'लेकिन मेरी बात तो ख़त्म हो चुकी।' गीता ने कहा और एक टक हरीश को देखने लगी। हरीश चाय की प्याली जैसे ही मुँह से लगाना चाहता था कि हाउस सर्जन दाख़िल हुआ और बिगड़ कर बोला—'रात के बारह बज रहे हैं और आप लोग अभी तक बातें कर कर रहे हैं।' सब लोग भौचक्का से रह गए। हाउस सर्जन नये आये हुए मरीज़ की तरफ़ इशारा करते हुए बोला—"आप लोगों की बातों और बिजली की रोशनी से इन्हें तकलीफ़ होती है। कम से कम इन का ख़याल तो कीजिए ही।" गीता सिर झुकाए चली गई। उसके दिल में एक कसक रह गई कि वह उसे चाय न पिला सकी। क्या वह फिर उसे चाय पिला सकेगी? या वह चाय वहाँ पड़ी की पड़ी ठढी हो जायगी।

दूसरी सुबह सारे अस्पताल में हंगामा था कि हरीश ठंढा पड़ गया।"

पुष्पा का दिल बैठ गया। वह चौंक गई, जैसे चोरी करते पकड़ ली गई हो। उसके मुँह से अचानक निकल गया—"तो पास वाले मरीज़ आप ही थे!"

राजो

"भाभी ! तुम्हारे कानों में यह झुमके बड़े भले लगते हैं। जब इनकी परछाँई गोरे-गोरे गालों पर पड़ती है तो तुम्हारा रूप और निखर जाता है। कितने सुन्दर हैं यह झुमके भाभी !"—बालम उसकी ओर देख कर मुस्कुराते हुए बोला। राजो शर्मा गई और लजाई-सी बोली—"हाँ, बालम; बहुत सुन्दर हैं ये। जब तुम्हारी गुड़िया-सी गोरी बहू आएगी तो यही झुमके मैं उसे दूँगी।"—"भैया बुरा मान गए तो ! कितने परिश्रम से बिचारे इसे खरीद पाए हैं और तुम....." बालम मूली खाते हुए बोला। बीच ही में राजो ने बात काटते हुए कहा—"वाह, वह क्यों बोलने लगे। तुम मेरे देवर हो और तुम्हारी बहू मेरी बहन। क्या बहन को प्यार करना बुरा है ?"

ठंढी चाय—

राजो पास बैठी बालम को पंखा झल रही थी और बालम ताड़ की चटाई पर बैठा जौ की रोटी और पालक का साग खा रहा था। वही तो राजो का एक ही देवर था। कितना सुन्दर, कैसा गठीला शरीर! जब देखो हँस रहा है। नटखट भी एक ही है। जब देखो भाभी को छेड़ता है। महीप से सदा रूठ जाता है।

दिन बीतते गए। भाभी देवर का प्यार बढ़ता गया। महीप इसे देखकर फूला नहीं समाता। कितना सुखमय है इनका जीवन। बालम, भाभी और भैया के लिए जीवन निछावर करने को तैयार रहता है। भैया और भाभी बालम को अपनी आँखों की ज्योति समझते हैं। क्या मजाल कि राजो को कोई टेढ़ी नजर से देख सके, बालम आँख ही निकाल लेगा उसकी। छः हाथ की लाठी सदा उसके कंधे पर रहती। जमींदार का कारिन्दा तक उससे थरथर काँपता। सोहन सिंह का तो हाथ ही तोड़ डाला था उसने, जब उसने पनघट पर जाती हुई रामू की लुगाई को छेड़ा था।

फूस के छप्पर के नीचे बैठा बालम रस्सी बँट रहा था और महीप खाट पर बैठा चिलम पी रहा था। अन्दर से राजो हाथ में दही का बरतन लिए बाहर आई और घी निकालने के लिए बैठ गई। वह मुस्कुरा रही थी। बालम ने उसकी मुस्कान देख ली। रस्सी बँटना छोड़कर भाई के समीप खाट पर जा बैठा और बोला—"देखो भैया, राजो भाभी मेरे मुँह में दही लगा देती हैं। मना कर दो उन्हें, नहीं तो मैं गोबर लगा दूँगा सारी में और तब कई दिनों तक मुझसे मुँह फुलाए रहेंगी।" महीप ने कंधे पर गमछा रख कर उठते हुए

कहा—"बालम, अब तुम्हारी भाभी दही नहीं लगाएगी। सुना राजो, अब इसे दही मत लगाना, हो सके तो किरासन तेल ही लगा देना।" वह मुस्कुराता हुआ घर के पिछवाड़े चला गया। बालम ज़ोर से चिल्लाया—"भैया, तुम भी तो मुझसे हँसी करते हो।" वह मुँह बना कर फिर रस्सी बँटने लगा। बकरी का बच्चा मिमिया रहा था और रस्सी तोड़कर सामने रखी हुई घास खाना चाहता था। राजो ने कहा—"ओ बालम, ज़रा मेमने को घास तो दे दे। देखते नहीं कब से मिमिया रहा है।" वह घास देने गया। राजो पीछे से बालम के गालों पर दही लगाकर पिछवाड़े भागी और महीप के पीछे छुप गई। बालम भी दौड़ा। अब वह धमा-चौकड़ी मची कि बस। महीप हँस रहा था और सोच रहा था—कितने आनन्द से भरा है हमारा जीवन। उसने मन ही मन उस देवता के चरणों में शीश झुका दिया जो गाँव के बीच एक पीपल के पेड़ के नीचे है।

रात हो गई थी। झिंगुर बोलने लगे थे। झोंपड़ी की ताक पर मिट्टी के तेल का दिया जल रहा था। महीप खा रहा था और पास ही चटाई पर बालम बेख़बर सो रहा था। राजो अन्दर से एक लोटा मट्ठा लेकर आई और उसे महीप के समीप रख कर बैठ गई। महीप ने ऊपर देखा और खाना बन्द कर दिया। "मैं तुम्हारे पास नहीं बैठूँगी, खाना ही बन्द कर देते हो।"—राजो ने घूँघट को आगे सरका कर शर्माते हुए कहा और महीप का मन खिल उठा। उसने राजो की ठोढी पकड़ कर अपनी ओर घुमाया, घूँघट को उँगलियों से ऊपर उठाकर बोला—"रानी, क्या खाऊँ। बिना खाए ही पेट भर

जाता है।" और वह शर्मा कर गुड़िया बन गई, बोली—"छोड़ो भी। तुम योंही चिकनी-चुपड़ी बातें बनाते हो, जो आधी झूठ होती है और आधी सच।" और दोनों ज़ोर से हँस पड़े। द्वार पर किसी ने पुकारा—"ओ महीप ! ओ महीप महराज !! ····· "—"क्या है भैया ! तुम ! गिरिधारी अन्दर ही आ जाओ। मैं ज़रा खा रहा हूँ, आओ बैठो।"—महीप द्वार खोलते हुए बोला। गिरिधारी अन्दर आया और लाठी टेक कर बोला—"नहीं भैया रात काफी बीत चुकी है। मैं घर जा रहा हूँ। चौधरी के घर की ओर से जा रहा था तो उन्होंने रोक कर कहा कि महीप को जरा जल्दी भेज देना। अब मैं चला। अच्छा भैया, राम राम।"

अँधेरी रात है। चौधरी अपने द्वार पर बैठा हुक्का पी रहा है और उसकी घर वाली अपने बच्चे को सुला रही है। सामने लटके हुए पिंजरे में तोता अपने परों में चोंच छुपाए सो रहा है। चौधरी की आँखें उस पर टँगी हैं। उसे यह भी सुधि नहीं कि चिलम की आग कब की बुझ चुकी है। किसी बड़ी चिड़िया ने सामने बरगद के पेड़ पर अपने पर फड़फड़ाए और चौधरी का ध्यान टूट गया, बोला—"ओ सुखिया की माँ, जरा हुक्का तो भरदे। दस पल भी तो यह आग नहीं ठहरती। देख टिकिया की आग बोझना।" वह खाट पर लेट गया और आँखें धरन पर रखे मूँज की गठरी पर जम गईं। "पाँव लागी चौधरी जी"—महीप ने कहा और मुस्कुराता हुआ खड़ा रहा। चौधरी उठकर बैठ गया—"ओ महीप, आओ बैठो। अच्छे अवसर पर आए। सौ साल से कम न जिओगे।"

महीप खाट पर बैठ गया। थोड़ी देर बाद चौधरी उठा और खड़ाऊँ खटखटाते मैदान में चला —"मेरे साथ इधर आओ, महीप ! मुझे कुछ आवश्यक बातें करनी हैं।" सिर झुकाए महीप चौधरी के पीछे-पीछे चला। उसका दिल धड़क रहा था। उसके पग बोझिल हो रहे थे। चौधरी बोला—"महीप, तुम तो जानते ही हो कि मैं तुम्हारा भला चाहने वाला हूँ ....." महीप बात काटते हुए अनुगृहीत स्वर में बोला—"यह भी कोई कहने की बात है, चौधरी जी।" और फिर चौधरी बोला—"देखो महीप, तुम्हारे भाई बालम और तुम्हारी घर वाली के बारे में बहुत काना-फूसी हो रही है। तुम जानते ही हो यह गाँव का मामला है। हमलोगों की भी बहू-बेटियाँ हैं। इसका क्या प्रभाव पड़ेगा उन पर ! हमलोगों के पास तो कुछ नहीं, दरिद्र हैं, एक शाम खाते हैं तो दूसरी की चिन्ता लगी रहती है। तन ढाँकने को कपड़े भी पूरे नहीं। फिर भी इज्जत तो रखते ही हैं।" महीप एक शब्द भी न बोल सका, जैसे उसे साँप सूँघ गया हो। जैसे उसकी जुबान पत्थर की हो गई हो। पैर तले की धरती उसे खिसकती मालूम होती थी। लगता था जैसे बूढ़ा बरगद उस पर गिर रहा है और गाँव वालों की घृणापूर्ण दृष्टि उसे घूर रही है। जैसे वह गाँव के कोने वाले कुँए का पत्थर बन गया हो—"यदि तुम्हें विश्वास न हो तो तुम कल्ह संध्या समय जमींदार के खेत की मेंढ़ पर देख लेना।"—चौधरी ने कहा।

दोपहर हो गई थी। पीपल के एक पुराने वृक्ष के नीचे राजो बालम के लिए थाली में भोजन और लोटा में पानी लिए बैठी थी।

सामने बालम खेत में हल चला रहा था। माथे से पसीना की बूँदें गिर कर आग-सी तपती धरती पर छन हो जाती थीं। फिर भी वह मुस्कुरा रहा था। उसकी अच्छी भाभी जो उसके सामने बैठी थी। राजो पीपल की जड़ में टेक लगाए बैठी कल्पना के ताने-बाने बुनने लगी और कुछ देर बाद झपकी आ गई। बालम ने हल खोला, बैलों को छाँव में बाँधा और स्वयं गमछा से पसीना पोंछता भाभी के पास आया और जोर से राजो के कानों में कहा—"कू"। वह चौंक कर उठी, ढलके आँचल को सँभाला और बालम को भोजन खिलाने लगी। एक झाड़ी की आड़ से चौधरी और महीप उनकी चुहलें देख रहे थे। देवर भावज में जैसा हँसी-मज़ाक होना चाहिए, हो रहा था। प्यार था पाप न था, मज़ाक था बस। हृदय था, उसमें भावज के लिए सम्मान था; किन्तु हवस न थी। महीप के कान अच्छी तरह भर दिए गए थे। उसे भली बातें भी बुरी लगीं। उसकी भौंहें तन गईं, आँखें लाल हो गईं और उसने अपना मोटा डंडा उठाया; किन्तु चौधरी ने रोक दिया।

रात काफ़ी अँधेरी थी। हाथ को हाथ नहीं दिखाई देता था। ज़ोर की वर्षा हो रही थी। बिजली की कौंध में महीप की तनी हुई भौंहें साफ़ दिखाई दे रही थीं। उसकी लाल आँखों में बिजली से भी अधिक तेजी थी। महीप कड़क कर बोला—"बालम," लेकिन उसकी कड़क बादलों की गरज में खो कर रह गई। वह फिर बोला, अपने सम्पूर्ण बल से बोला—"बालम," और सामने सिर झुकाए बालम खड़ा था। महीप पागल हो रहा था। उसने कहा—"बालम!

तुमसे मुझे ऐसी आशा न थी। तू तो गाँव की आबरू का रक्षक था, फिर अपने ही घर की आबरू पर डाका डालेगा ऐसी आशा न थी।" महीप की आँखों से अंगार निकलने लगे। रसोई-घर में राजो ने दोनों भाइयों का वार्त्तालाप सुना और वह द्वार पर आकर किवाड़ की ओट में खड़ी हो गई—"भैया, आपको क्या हो गया है? मैंने कोई ऐसी बेअदबी नहीं की जो आप मुझको नीच, कमीना कह रहे हैं?" बालम ने ज़रा तन कर कहा। जो निर्दोष होता है वह सदा इसी प्रकार तन जाया करता है। बात बढ़ती गई और दोनों भाइयों का प्रेम घटता गया। महीप ने कहा—"निकल जा मेरे घर से कमीने, अभी निकल जा।" और बालम सिर झुकाए आँखों में आँसू लिए उसी समय उसी अँधेरी रात में घर से निकल गया और राजो चकराकर द्वार के पास गिर पड़ी।

एक छोटी-सी झोपड़ी में बालम खाट पर सो रहा है। आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी है और बुखार से उसका शरीर तवे के समान तप रहा है। उसके लिए अब क्या रहा। उसे अपने पर गौरव था, अपनी चाल-चलन पर नाज़ था। वह अपने ही भाई के हाथों लुट गया। भाभी से बोल-चाल बन्द हुई और भाई का प्रेम गँवा बैठा। जीवन कटु हो गया। एक घूँट पानी देने वाला भी कोई उसके पास न था। किसी ने धीरे से द्वार खोला। बालम ने देखा उसकी राजो भाभी धीरे धीरे आ रही है। वह खाट पर बैठ गया। राजो बालम के सिरहाने बैठ गई। एकाएक राजो का हाथ बालम के हाथ में पड़ गया और वह बोल उठी—"तुम्हें तो बुखार है!

यह अपनी क्या दशा बना रखी है तुमने ?" वह रोने लगी। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गईं। बालम ने उसे समझाया—"भाभी, रोती क्यों हो ? होनी को कौन टाल सकता है। तुम मत रोओ, भाभी। इससे मेरा दुख और बढ़ जाएगा। मुझे जो कल मरना है तो आज ही मर जाउँगा।"—"मैं छुप कर आई हूँ, बालम। मैं प्रतिदिन इसी समय रात में आकर तुम्हें देख जाउँगी। लो ये रुपए, दवा-दारू में खर्च करना।" वह रुपए खाट पर रख रोती चली गई। बालम की आँखें चाँदी के चंद टुकड़ों पर लगी की लगी रह गईं। वह ज़ोर से हँसा—"दवा-दारू ! भाभी तुम भी समझती हो कि तुम्हारा देवर बालम जीवित है। बालम तो उसी दिन मर गया जब उसपर झूठा दोष लगाया गया था।"

सूरज डूब रहा था। चरवाहे अपनी भैंसी और गाएँ लिए मैदान से गाँव को लौट रहे थे। स्त्रियाँ कमर पर गागर लिए नदी से पानी लाने जा रही थीं। एक खेत की मेंढ पर झाड़ियों की ओट में चौधरी राजो का हाथ पकड़े अपनी गोद में खींच रहा था और····· राजो हाथ छुड़ाने का प्रयास कर रही थी। बाल बिखर गए थे। हाथों की कुछ चूड़ियाँ टूट गई थीं। वह अर्द्ध-नग्न हो चुकी थी। राजो ज़ोर से चिल्लाई। उधर से महीप काम करके घर वापस जा रहा था। राजो की आवाज़ पहचान कर उस ओर लपका और चौधरी के सिर पर लाठी का एक ऐसा हाथ मारा कि वह वहीं ढेर हो गया। महीप अपने घर चला आया। राजो आँखों में आँसू भरे बालम की झोपड़ी में पहुँची और रो-रो कर सारा हाल उसे सुनाया।

बालम ने कहा—"भाभी, मत रोओ। तुम्हारा सुहाग लुटने न दूँगा। मैं जब तक जीवित हूँ, तुम्हारी माँग के सिन्दूर का रंग फीका न पड़ने दूँगा। मैं इसके लिए कानून से लड़ूँगा और भाग्य से भी। तुम घर जाओ भाभी और सब कुछ मुझ पर छोड़ दो।"

बालम ने थाने जाकर कुसूर कबूल कर लिया और वह कैद कर लिया गया। उसने अपने हाथों में हथकड़ियाँ पहन लीं, जिससे राजो की कलाइयों की चूड़ियाँ न टूट सकें। महीप ने अपने घर को, अपने हल बैल को, थाली लोटा को और अपनी स्त्री के आभूषण गिरवी रख कर रुपए इकट्ठे किए और अपने भाई की रक्षा के लिए एँड़ी-चोटी का बल लगा दिया। किन्तु कहाँ वे ग़रीब किसान और कहाँ गाँव का चौधरी! ज़मीन्दार की गवाही बहुत मज़बूत थी।

सुनसान रात। चारो ओर सन्नाटा। केवल चौकीदार का कर्कश स्वर वातावरण में गूँज जाता और कुत्ते उसका उत्तर भौंक कर देते। राजो ज़मींदार के पलंग पर पड़ी थी और ज़मींदार हँस रहा था। क्यों न हँसता! राजो का यौवन आज उसके चरणों में पड़ा था—बेबस और लाचार। वह पलंग से उठ खड़ी हुई। उसकी दृष्टि बिछावन की शिकनों पर गई और उसने चीख़ कर दोनों हाथों से आँखें मूँद लीं। चोली जगह-जगह से फट गई थी। बूढ़ा ज़मींदार राजो की ठोढी ऊपर उठाते हुए बोला—"मेरी रानी! तुम चिन्ता न करो, बालम को मैं फाँसी के तख्ते से बचा लूँगा, लेकिन ज़रा तुम मेरी चढ़ती जवानी पर ख्याल करना!"

सुबह हो गई थी। राजो ने सुना बालम जेल में रात मर गया,

शायद दिल की धड़कन बन्द हो गई थी। सारे गाँव में यह चर्चा चल रही थी—बालम मर गया ! बालम मर गया !! राजो मूर्त्तिवत् किवाड़ से लगी खड़ी थी और महीप सिर पर हाथ रखे आँगन में रो रहा था। गाँव के लोग उसे समझा-बुझा रहे थे, लेकिन उसकी आँखों के आँसू न थमते थे। राजो सोच रही थी जिसके लिए उसने अपनी आबरू गँवा दी वही न रहा। पति को वह क्या मुँह दिखाएगी। बालम चला गया, सतीत्व चला गया और जवानी लुट गई। अब जीकर वह क्या करेगी। महीप और गाँव वालों ने घर में किसी की चीख़ सुनी और लोग दौड़ पड़े उस ओर। राजो के गले में रस्सी का फंदा था और उसका निष्प्राण शरीर झूल रहा था।

महीप अवाक् खड़ा था। उस झूलते शरीर में कभी उसे राजो दिखाई देती थी और कभी बालम।

★

काली शिरवानी

सरोज कुछ गुनगुना रही थी और पूरे क़द के आइना की सरोज के लाल होठ भी हिल रहे थे। उसने आइना में देखा एक रंगीन परछाँई और उसकी आँखें शर्म से नीचे झुक गईं। उसकी आँखें नीचे क्या झुकीं विचार और ऊपर उठ गए। नर्म-मुलायम बालों में लगे तेल की भीनी सुगन्ध और ब्लाउज़ से निकली हुई गन्ध ने सरोज को दूसरी दुनिया में पहुँचा दिया और उसकी झुकी हुई आँखें बन्द होने लगीं। उसने अनुभव किया कि कोई परियों के लोक की एक देवी आई और गुलाब की नन्हीं-नन्हीं पंखड़ियों से उसकी पलकें सहलाने लगी। वह सोचने लगी क्या यही है मेरा जीवन? क्या मेरा यह कमरा जीवन के संगीत से भरा पड़ा है? क्या मैं गीत ? फिर मेरा मधुकर कहाँ गया और गया तो आया क्यों नहीं? क्यों

मेरा संसार सूना कर गया ? उसकी दृष्टि ऊपर उठी, आबनूस के फ्रेम में लगे हुए एक सुन्दर लड़के के चित्र पर गई और ऊपर की ऊपर ही रह गई। ऐसा लगता था कि फिर वह दृष्टि नीचे न आएगी।

कितना सुन्दर है यह मधुकर ! काश ! वह जीवित होता तो सरोज कुछ और होती और उसकी सुन्दरता द्विगुणित हो जाती। उन आँखों की कोरों को काजल कहाँ तक छुपा सकता था जो आँसू बहाते-बहाते सूज गई थीं। पाउडर-हल्के गुलाबी पाउडर के नन्हें-नन्हें कण भला गालों पर कबतक रहते ? वे कण अश्रु की धारा में धुल जाते। आशाएँ झूम-झूम कर आतीं और निर्दयी काँच से टकरा कर चली जातीं। काश ! कोई उस निर्दयी काँच को तोड़ सकता; लेकिन ऐसा बल था किसके पास ? चिरनिद्राभिभूत को कौन जगा सकता है ? सरोज के दिल का शीशा चूर हो सकता है, किन्तु इस चित्र का ! पाषाण है पाषाण, लोहे की मज़बूती सिमिट आई है इसमें। द्वार पर खटका हुआ और वे सपने टूट गए। उसने मुड़ कर पीछे देखा दाई सिर नीचा किए खड़ी थी—"अन्दर आ जाओ, क्या बात है ?" दाई एक कार्ड मेज़ पर रखते हुए बोली—"खन्ना साहब ने यह कार्ड भेजा है।" और वह बाहर चली गई। सरोज की आँखें कार्ड पर लिखी हुई पंक्तियों पर बिजली के वेग से दौड़ रही थीं और वह खुशी से नाच उठी। उसकी उमंगें नाच उठीं और मन की तरंगें भी। सरोज आपादमस्तक नर्त्तकी बन गई। मधुकर आ रहा है, बम्बई से आ रहा है। मधुकर—वही सुन्दर और सुप्रसिद्ध कथाकार और नाटककार। मधुकर जो कई वर्षों से सरोज को तड़पा रहा था

और वह तड़प-तड़प कर प्रसन्न हो रही थी। स्थानीय रंगमहल में आ रहा है। उसका मधुकर! किन्तु वह केवल लेखिनी के मधुकर को जानती है। उस मधुकर को जानती है जिसकी कहानियाँ वह पढ़ा करती थी। वही कथाएँ जिसमें सरोज की बोलती हुई तस्वीरें होतीं। भला वह कैसे जान पाया कि एक यह सरोज भी इतनी बड़ी दुनिया में है। दिल को दिल से राह होती है। कल्पना की उड़ान जहाँ न पहुँच जाए। उस उड़ान को न पत्थर की दीवारें रोक सकती हैं और न समुद्र की उठती हुई लहरें। वह अवश्य जाएगी और देखेगी अपनी ही आँखों से अपनी स्मृति को। वह जाकर देखेगी हृदय की गहराइयों में वर्षों से सिसकती भावनाओं और संवेदनाओं को। वह सुनेगी उसे बोलते हुए और झूम-झूम जाएगी।

रंगमहल लोगों से भरा था। प्रत्येक के हृदय में मधुकर को देखने की आकांक्षा अँगड़ाई ले रही थी। सरोज का तो पूछना ही क्या। आज वह आकाश में उड़ रही थी। उसका शरीर रंगमहल के एक बड़े सोफे पर था, पर हृदय! वह तो किसी अज्ञात स्थान की सैर कर रहा था। उसके दोनों हाथों में एक हार था। वह रह-रह कर उस हार के फूलों को चूम लेती। वह चाहती थी कि वहाँ कोई न हो। हो तो बस उसका मधुकर और उसकी यह माला। वह बेचैनी की दशा में कभी खड़ी हो जाती, कभी इधर-उधर देखती और फिर निराश होकर बैठ जाती। उसकी दशा उस बालक के समान हो रही थी जो अपनी मनचाही वस्तु शीशा में देखता हो, पर पा नहीं सकता।

मधुकर और उसकी जीवन-संगिनी कामिनी साथ-साथ रंगमंच पर आए। मधुकर खड़ा था माइक्रोफ़ोन के सामने और कामिनी मुस्कुरा रही थी। सरोज एकाएक उछल पड़ी और फिर बैठ गई। वह देख रही थी और सोच रही थी कि काली शिरवानी और पायजामे में मधुकर कितना सुन्दर लग रहा है। गोरा चेहरा और काली शिरवानी। वह देखती की देखती रह गई। वह क्यों आई यह भूल गई और अब क्या करे यह भी भूल गई, तभी दाई का स्वर उसके कानों में पहुँचा—"सरोज रानी, सबलोग मधुकर जी को हार पहना चुके और आप बैठी ही हैं?" वह धीरे-धीरे उठी और मधुकर के गले में अपनी माला डाल दी, उस धागे को जिसमें फूल नहीं आशाएँ और उमंगें पिरोई हुई थीं। उसकी दृष्टि कामिनी पर गई और तब उसकी होठों पर एक स्मिति की रेखा नाच गई। सरोज की आँखें मधुकर की काली शिरवानी पर थीं। वह बोल उठी—"आप बहुत सुन्दर हैं। यह काली शिरवानी तो बस मत पूछिए। कितनी प्रसन्न होती होंगी आपकी माँ जब·····।" और दोनों मुस्कुरा दिए। वह आकर अपने सोफे पर बैठ गई और भोजन आरम्भ हुआ। सोच रही थी कि क्या कुछ वह बक गई। क्या सोचा होगा मधुकर ने। वह यही सोच रही थी कि सभापति ने भाषण आरम्भ किया—"सज्जनो! यही हैं वह मधुकर जी जिनकी प्रतीक्षा में आप वर्षों से थे और सब से बड़ी प्रसन्नता की बात तो यह है कि मधुकर जी कामिनी देवी के साथ कुछ महीनों तक यहीं रहेंगे·····।"

सरोज आज भी ड्रेसिंग-टेबुल के आइने के सम्मुख थी। अन्तर

केवल यह था कि वह वहाँ बनने सँवरने को न थी वरन् सिंगार को बिगाड़ने के लिए। उसने अपने कपोलों से पाउडर को धो डाला, अपने काले रेशमी बालों को बिखरा दिए और जार्जेट की साड़ी का स्थान एक मैली, कहीं कहीं से फटी, खद्दर की साड़ी ने ले लिया। हाथ में आज बैनिटी बैग न था, बल्कि एक टूटी लाठी थी। दाई द्वार पर खड़ी मालकिन को आश्चर्य से देख रही थी। वह सोचने लगी कि उसकी मालकिन दीवानी तो नहीं हो गई? वह पूछ ही तो बैठी—"आप यह सब क्या कर रही हैं, सरकार?" और सरोज बोली—"मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं आज से मधुकर की दासी हूँ। मैं उसके समीप अधिक से अधिक देर तक रहना चाहती हूँ। रोज़ सुबह जाऊँगी और दोपहर को चली आऊँगी। देखना यह भेद किसी को न मालूम हो।"

सरोज को नौकरी करते आज एक मास हो आया। मधुकर ने उसे बीस रुपए पर दासी रख लिया था। धीरे धीरे मधुकर सरोज की ओर खिचने लगा, फिर उस पर जान भी देने लगा और सरोज का पूछना ही क्या ..... । किन्तु न जाने कामिनी क्यों जलती थी। क्यों घृणा थी उसे सरोज से। दासी के काम से प्रसन्न होकर स्वामी की उसपर कृपा होनी कोई नवीन बात तो न थी। फिर भी कामिनी की आँखों में सरोज सदा काँटों-सी खटकती थी। एक दिन कामिनी के कान खड़े हो गए। वह समझ गई थी कि सरोज बूढ़ी नहीं युवती है और यह बात छुपती भी कैसे। उस दिन से वह छाया के सदृश अपने पति के साथ रहने लगी। वह सोचती ऐसा करने से यह चुड़ैल

टंढी चाय—

उसके पति पर डोरे न डाल सकेगी।

सरोज को मधुकर के यहाँ नौकरी करते अब तीन महीने हो गए। उसने मधुकर के दिए रुपए से एक काली शिरवानी बनवाई।

अँधेरी रात थी। मूसलधार वृष्टि हो रही थी। बिजली कड़कती और सरोज का हृदय भी दहल जाता। कामिनी अपनी एक सहेली के पास जाते समय सरोज को चेतावनी दे गई थी कि जब तक वह लौट न आए, वह अपने घर नहीं जाएगी। अंधा क्या चाहे, दो आँखें! मधुकर आज जल्दी ही सो गया था। बिना दूध पिए ही वह लेट गया था। थोड़ी देर बाद सरोज दूध गरमा कर लाई। न जाने क्यों उसका हृदय तीव्र-गति से धड़क रहा था। वह जैसे ही द्वार पर पहुँची, देखा, मधुकर पर स्वप्न की मादकता छा चुकी थी। दूसरे क्षण उसकी दृष्टि खूँटी पर टँगी काली शिरवानी पर पड़ी और वह वहीं ठिठक गई। उसे लगा कि किसी ने उसके पैरों को ज़ंजीर में जकड़ दिया हो। वह आज मधुकर को जी भर प्यार करना चाहती थी। वह धीरे धीरे आगे बढ़ी, दूध का गिलास टेबुल पर रखा और उसका चेहरा ध्यान से देखने लगी। उसकी आँखों से आँसू की बूँदें मधुकर के माथे पर गिरीं और वह करवट बदल कर फिर सो गया। कुछ क्षण बाद मधुकर जाग उठा। वह एकटक देखता ही रह गया। उसे दूध पिलाकर सरोज लौट आई। देखा कामिनी रसोई-घर के द्वार पर खड़ी थी। माथे पर बल पड़े थे और त्योरी चढ़ी थी।

प्रातःकाल का समय। मधुकर एक पार्टी में जाने के लिए तैयार हो रहा था। वह टाई का रंग पसन्द कर रहा था। किस रंग का

कोट और पतलून उस भूरे टाई के साथ सूट करेगा ? वह गुनगुना रहा था। उसी समय दासी सरोज हाथ में काली शिरवानी लिए पहुँची और काँपते स्वर में बोली—"मधुकर बाबू ! मेरी यह प्रार्थना है और यह मेरे जीवन की प्रथम और अन्तिम प्रार्थना है कि आज आप इस शिरवानी को पहन कर पार्टी में जाएँ। क्या आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे ?" मुस्कुरा पड़ा मधुकर और बोला—"क्यों नहीं, मैं इसे अवश्य पहनूँगा।" उसने वह शिरवानी पहन ली। सरोज झूम उठी। उसके समान शायद ही कोई संसार में प्रसन्न हो। मधुकर कितना भला लग रहा था उस काली शिरवानी में। उसी समय कामिनी क्रोध से तमतमाई कमरे में आई और कड़क कर बोली—"डायन, तूने मेरे जीवन में रोग लगा दिया। शर्म नहीं आई तुझे दूसरे के पति पर डोरे डालते ? मैं खून के घूँट पी-पीकर अभी तक सह रही थी और तू है कि सिर चढ़ी जा रही है। कुलटा, डायन।" सरोज की आँखों से आँसू गिरने लगे। वह बोली—"बेटी कामिनी, तुम यह सब क्या कह रही हो। क्या अपने बेटे को प्यार करना पाप है ? क्या अपने बेटे से डायन ही प्यार करती है ? मैं क्या सुन रही हूँ भगवान ! बेटा मधुकर, क्या तुम भी मुझे वही समझ रहे हो जो कामिनी समझती है ?" और वह फूट-फूट कर रोने लगी। मधुकर केवल इतना कह सका—"नहीं माँ।" और वह सरोज से लिपट गया। कामिनी कड़की—"मैं कहती हूँ इस चुड़ैल की दी हुई शिरवानी उतार दो, नहीं तो मैं कुछ खा लूँगी। उतार दो। अभी, जल्द।" मधुकर भौचक्का रह गया। वह माँ की बात रखे या अपनी पत्नी की।

सरोज कामिनी के पैरों पर गिर कर बोली—"देखो कामिनी, आज तुम्हारी माँ तुम्हारे पैरों पर गिरी है। उसकी इच्छा को न ठुकराओ। मधुकर को शिरवानी उतारने को बाध्य न करो। देखो मेरे दस वर्ष के लड़के को। यह है उसका फोटो, मधुकर से कितना मिलता-जुलता और नाम भी तो·····।" लेकिन वह पत्थर-दिल और पत्थर बन गई। उसने शिरवानी उतरवा कर सरोज के सामने ही उसमें सलाई लगा दी। यह सरोज की चिता थी। शिरवानी नहीं, उसका हृदय जल रहा था। उसने मधुकर को छाती से लगा लिया और बोली—"बेटा, मुझे अब विदा दो। अब मैं सदा के लिए चली।" सरोज की दासी दौड़ती हुई मधुकर के यहाँ आई और उसने पूछा—"मधुकर जी, आपकी दासी सरोज कहाँ है?" वह दोनों सिर झुकाए खड़े थे और सामने शिरवानी जल रही थी। कामिनी ने दाई से सारी बातें कह दीं। दाई चीख उठी—"आपलोगों ने यह क्या किया! वह एक बड़े घर की लड़की और बड़े आफिसर की पत्नी थीं, लेकिन स्वर्गीय पुत्र के पीछे पागल।"

सरोज चली गई, मधुकर की खुशी भी गई और दूसरे दिन पत्रिका पर नागरिकों की आँखें खिंची थीं—"जिलाधीश की पत्नी श्रीमती सरोज एम० ए० कई दिनों से लापता हैं।"

★

अगस्त हँस रहा है

आशाओं की छाओं में आज उसकी उमंगें कुछ कर गुज़रना चाहती हैं। दिल का मोर नाच रहा है, अल्हड़ जवानी दीवानी हो रही है। उसकी मुस्कुराहट गुलाबी होठों की तपिश से और निखर रही है। मेंहदी रची हुई अँगुलियाँ जब उसके गोरे-गोरे गालों पर जाती हैं तो मदभरी आँखें बरबस झुक ही जाती हैं, वे मुँदे-खुले लोचन उस कली की नज़ाकत को मात कर रहे हैं जिस पर शबनम की बूँदें थिरकती हैं, मचलती हैं और ..... वह भी आज मचलना चाहती है लेकिन ये सखियाँ ..... । यह टोली पीछा छोड़े तब न ! वह फूलों के गहनों से सजाई जा रही है। आँखों में काजल, पैरों में छागल; लगता है सभी ओर मादकता छाई जा रही है। वे झुकी-झुकी आँखें, उठी-उठी पलकें किसी को समेट लेना चाहती हैं अपने में। काश !

वह अभी आ जाता, उसके मन को सजा जाता। ढोंग है यह रस्म वो रिवाज, कितना पत्थर दिल है समाज! अगर दिल को दिल से मिलाना ही है तो फिर देर क्यों? वह शरमा गई उसका शरीर सिमट गया, जैसे लाजवंती फूल को किसी ने छू दिया हो। फूल थी, अब कली बन गई; सखियों के लिए एक दिल्लगी बन गई।

पुष्पा ससुराल आ गई अपने हृदयेश्वर के पास। मन में उमंग लिए, अरमानों की तरंग लिए। वह कल क्या थी भूल गई, अभी क्या है याद नहीं; पता नहीं 'उनके' आने पर क्या रहेगी। उसके दिल में गुदगुदी होने लगी और रेशमी साड़ी का आँचल कंधे से सरक गया, जिसे न जाने उसने क्यों नहीं सँभाला और दूसरे ही क्षण उसकी नज़र अपने गोरे सलोने·····उफ़! उसने जल्दी से आँचल खींच लिया। उस समय उसे कॉलेज की लेडी प्रोफेसर की बात याद आ गई "पुष्पा! केश सम्हाल कर रखो", देखा उसके लम्बे बाल ज़मीन से लग रहे हैं। सब तो सम्हाल लिया लेकिन एक बाल उसी तरह लटकता रहा। "उसे भी ठीक करो पुष्पा।" पुष्पा मुस्कुरा पड़ी थी, "ठीक है एक लट से क्या होता है" और तब नटखट सुषमा ने कहा था "इसी एक बाल में तो बाँध कर रखोगी पाँच फीट, छः इंच के चौड़े चकले को" और कहकहे से सारा क्लास गूँज उठा था।

पुष्पा खिड़की पर बैठी है और आँखें बिछी हैं किसी की प्रतीक्षा में। वे अब आते ही होंगे। वह कलाई पर लगी सुनहली घड़ी को देखती और उसे कान के नज़दीक ले जाकर सुनती सम्भवतः बन्द न हो गई हो, लेकिन सुई चल रही थी ठीक उसके दिल की धड़कनों की

तरह। मौलश्री के कुँज में उसने देखा एक भौंरे को फूल का चक्कर लगाते। उनका वह मुस्कुरा कर देखना, उनकी मनमोहक चुहल-बाज़ियाँ और उसका घूँघट को और खींच लेना ये सब बातें उसे याद आ रही हैं। वह खुशी से नाच उठी और उसकी आँखें सामने के बड़े से कैलेंडर पर जा कर टिक गईं।

वे आ तो गए, पर यह उनका शव था और पुष्पा की आँखें कैलेंडर पर जमी की जमी रहीं। १५ अगस्त ! १९४२ का १५ अगस्त ! पुष्पा की माँग का सिन्दूर धुल गया। सुहाग का दीप सदा के लिए बुझ गया। सारे घर में शोक छाया था। कौन जानता था कि बसने के पहले ही उसका घर उजड़ जायगा और उस पर बिजली टूट पड़ेगी। अचानक पिस्तौल की सूरत उसके सामने आगई जिसने राजन को हमेशा के लिए सुला दिया था। पिस्तौल की आवाज़ उसके कानों में हथौड़े की तरह पड़ रही थी। वह सोच रही थी कि किस खूबी से सीना ताने राजन हज़ारों आदमियों के बीच कह रहा था "स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हम अब गुलाम नहीं रह सकते। हमारे देश की ओर बढ़नेवाले हाथ तोड़ दिये जाएँगे और शैतानी आँखें फोड़ दी जाएँगी" और बैंग..... बैंग ....की आवाज़ आकाश में गूँज उठी होगी।

पुष्पा रो नहीं रही थी। क्यों रोए ? कौन सुननेवाला था उसका ! उसका जीवन तो चला गया, अब केवल मृत्यु ही उसकी शुभचिन्तक बन कर रह गई। देखें वह कब तक साथ देती है। वह अँगरेज़ों को चबा जाना चाहती थी, मगर अपनी ही उँगली दाँतों तले

दब गई। क्या उसे ही चबा डाले ? पुष्पा की नज़रें कैलेंडर से हटती ही न थीं, वह देख रही थी—नम्बर १५ को, जो लाल रोशनाई से लिखा हुआ था। सम्भवतः उसी की माँग का सिन्दूर वहाँ निखर रहा था। क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गईं, भौंवें तन गईं। वह कैलेन्डर की तरफ लपकी। वह आज उसे नोच कर फाड़ देगी, वह आज कैलेन्डर को टुकड़े टुकड़े कर देगी—सौत कलमुँही ! उसने अपने दोनों हाँथो को बढ़ाया मगर ..... , आँखें छलछला आईं। पुष्पा सोफ़े पर गिर पड़ी। उसने देखा फ्रांस की भीषण क्रान्ति ! उसने सुना "हमें रोटी दो, हम फ्रांसिसियों को और कुछ नहीं, रोटी चाहिए" और उसने देखा सोलहवें लुई (*Louis XVI*) को फाँसी के तख्ते पर चढ़ते और उसने यह भी देखा कि (*Marie Antoenette*) मेरी-एनटवाएनेट अपने स्वामी से गले मिल रही थी। वह चौंक पड़ी, हाय रे अगस्त ! तुमने कितनों की जान ली, कितनो के सुहाग लूटे। मेरी-एनटवाएनेट और पुष्पा, पुष्पा और मेरी-एनटवाएनेट !

अब पुष्पा पशुओं के बीच नहीं रहना चाहती थी। उसको उस घर से घृणा हो गई जहाँ उसकी सुन्दर कलाइयों से चूड़ियाँ फोड़ कर निकाल दी गई। वह उस मुहल्ले से डरने लगी जहाँ सुहागिनें उसे विधवा कह कर कतराती थीं। उसके लिए अब उस नगर में कोई आकर्षण न था।

वह अपने देवर निर्मल के साथ बिहार प्रान्त से चली गई, चली क्या गई भाग खड़ी हुई। रातोरात बिहार की सीमा से दूर हो गई,

कौन ठिकाना दिन में कहीं आततायियों की छाया उसका पीछा करे ? अब वे पंजाब पहुँच गये थे। अपनों से दूर; परायों के क़रीब। पराये ही तो अपने हो जाया करते हैं। ये पराये उसके घाव पर मरहम न लगाएँ तो न लगाएँ, उसे नासूर तो न बनाएँगे। वह स्कूल की अध्यापिका हो गई और निर्मल एक आफ़िस में काम करने लगा। उस स्कूल में हिन्दु, मुसलिम और सिख सबकी लड़कियाँ साथ पढ़ती थीं। पुष्पा उनलोगों का प्रेम पाकर अपने बुरे दिन भूल गई। ये छोटी छोटी लड़कियाँ कितनी भली लगती थीं —पशुता से दूर, देवत्व के समीप !

उसे अब कोई विधवा नहीं कहता। वहाँ जाकर वह सब की बहन बन गई। नन्ही मुन्नी लड़कियाँ उससे बहुत घुलमिल गई थीं। उनकी शरारतें पुष्पा की खुशी थी। उनका मचलना पुष्पा के चेहरे पर प्रसन्नता की लहर दौड़ा देता। ईद आती तो जेबुन्निसाँ घसीट कर अपने घर ले जाती और दस्तरख़ान बिछ जाता और तब जेबुन्निसाँ का बड़ा भाई कहता "बहन ! आपने तो हमलोगों को बेदाम का गुलाम बना रखा है। काश ! आप जैसी मेरी अपनी कोई बहन होती" और तब पुष्पा मुस्कुरा कर कहती "मैं जो हूँ"। हँसी से वातावरण गूज जाता। साथ वाले कमरे से रेडियो बोल उठता "हिन्दु-मुसलिम-सिख-ईसाई, आपस में हैं भाई भाई ....." और इसी तरह पुष्पा अल्पकाल ही में बहुत सी जेबुन्निसाओं की माताओं और भाईयों की आँखों का तारा बन गई। कामिनी भी होली के अवसर पर उसे अपने घर ले जाना न भूलती और पुष्पा अबीर से भर जाती।

ठंढी चाय—

कहाँ नन्हें हाथों से बिखेरा हुआ कुमकुम अबीर, कहाँ आसमान के जगमगाते तारे ! वह अगस्त को भूल गई और अपनी सूनी माँग को भी भूल गई। उसके जीवन-दीप की लौ तेज होने लगी। भावनाओं की ठंढी राख के भीतर से उसकी प्रसन्नता की चिनगारियाँ उभर पड़ना चाहती थीं।

जब निर्दयता का नाटक समाप्त हुआ तो शैतानों का नृत्य आरम्भ हुआ। सभ्यता की हिचकियाँ बन्द हुईं तो मानवता आहें भरने लगी। धरती और आकाश हर जगह आज शैतानों का राज्य था। पगली पुष्पा ! क्या दुर्भाग्य भी किसी का साथ कहीं इतनी जल्दी छोड़ देता है ! धूप-छाँह की आँख-मिचौनी अभी तुमने देखी ही कहाँ है ! पाशविकता की ललकार और आस्तीन के साँपों की फुंकार अभी तुमने सुनी ही कहाँ है !

पंजाब में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। पशुता की आँखें भी शर्म से झुक गईं। इबलीस का नग्न नृत्य आरम्भ हुआ। दफ़ बजने लगे और उस पर नंगी स्त्रियाँ नाचने लगीं। हज़ारों वर्षों की सभ्यता के मुँह पर आज कालिख पोत दी गई। वही अगस्त फिर आया। भयानक अगस्त, जिसे पुष्पा भुला बैठी थी। वही अगस्त जिसने पुष्पा की मेंहदी रची हुई उँगलियों की लालिमा को वैधव्य की भट्ठी में जला कर राख कर दिया था। सन् '४७ में फिर अगस्त आया। जैसे यही पुष्पा का एक सच्चा साथी हो। पुष्पा भी इस आँधी के थपेड़े से न बच सकी। जेबुन्निसाओं के भाइयों ने उसका सतीत्व लूटा। भाइयों ने बहनों की इज्जत पर डाँका डाला। जो हाथ

अपनी बहन की सतीत्व-रक्षा में उठते थे वही आज उनकी चोलियों पर शिकनें डाल रहे थे। पुष्पा, अब तू क्या करेगी! बिहार छोड़ पंजाब आई; और अब पंजाब छोड़ कर कहाँ जाएगी, क्या आसमान पर? तो आसमान भी कम दुखदाई नहीं है। तब तुम्हारा स्वामी गया, अब तुम्हारी इज्जत गई। एक अगस्त ने तुम्हारे सुहाग पर डाँका डाला और दूसरे ने सतीत्व को अपने रक्तरंजित पंजों में दबोच लिया। आज पुष्पा की वह चीज़ छीन ली गई, जिस पर उसे गर्व था। वह आज रो रही थी। इसलिए नहीं कि उसके सतीत्व पर डाँका डाला गया, बल्कि इसलिए कि हज़ारों हिन्दु-मुसलमान पुष्पाओं के सतीत्व लूटे गए। मनुष्य इतना नीच भी हो सकता है उसे मालूम न था। विधाता की उच्चतम सृष्टि—यह मनुष्य! हुँह, धिक्कार है उसकी ऐसी कला पर!

आज फिर वही अगस्त अपनी लाल-लाल आँखों से पुष्पा को घूर रहा था। और वह सिहर गई। उसके रोंगटे खड़े हो गए और वह किसी तरह निर्मल के साथ फिर पंजाब से भाग खड़ी हुई। फिर वह उसी बिहार प्रान्त में चली आई। सम्भवतः वह अपने प्रियतम की चिता पर दो बूँद आँसू बहाकर उसी में अपने को विलीन कर पाए। सम्भवतः यह कहने के लिए कि पुष्पा तुम्हारी थाती की रक्षा न कर सकी और इसलिए ·····।

अब पुष्पा का स्वास्थ्य गिरने लगा। अब जीवन उसके दुर्बल कंधों पर एक बोझ हो गया। दुर्भाग्य का भार भी उसकी सहनशक्ति से परे था। पुष्पा अब चलती फिरती लाश बन कर रह गई। पीड़ा

जाग रही थी और उमंग सो चुकी थी।

वह पलंग पर सोई है। अब उसके पैरों में चलने की शक्ति कहाँ रही। केवल रो-रो कर तकिया भिगो देना, टकटकी लगाकर छत की कड़ियाँ गिनना, यही उसकी आदत हो गई है। वह मौत के झूले में झूल रही है। निर्मल भाभी की यह बुरी दशा देख कर आँखों में आँसू भर लाता। वह मनुष्य तो था, पर सम्भवतः विधि की 'उच्चतम' सृष्टि नहीं!

× × × × ×

इस समय रात के ग्यारह बजे हैं। आज चौदह अगस्त है, एक घंटे बाद १५ अगस्त १९४९ हो जाएगा। भारत की आज़ादी का तीसरा सुनहला साल। वर्षों के लगातार बलिदानों तथा त्यागों का तीसरा फल। शहीदों के मज़ारों पर आज तीसरी बार फूलों के हार चढ़ाए जाएँगे और तीसरी बार उनकी क़ब्रों पर आज़ादी के दीप जलाए जाएँगे। पुष्पा की आँखें भी उस समय दो मिनटों के लिए खुलीं, शायद यह देखने को कि उसका राजन भी तो शहीद है, उसकी समाधि पर भी दिया जल रहा है या नहीं। लेकिन उसने देखा चारो ओर अंधेरा ही अंधेरा—ठीक उसके जीवन की तरह! "भाभी उठो! उठो!! बारह बज चुके, आज़ादी का दिया जलाओ" पुष्पा की आँखें खुलीं और वह निर्मल को देख कर मुस्कुराई—सम्भवतः उसकी नादानी पर। कितना भोला है वह! भोला है मगर धुन का बहुत पक्का। दो वर्षों से वह अपनी भाभी को आज़ादी के अवसर पर दिया जलाने के लिए कहता आया है और उसके बदले उसे पुष्पा की अट-

हासपूर्ण हँसी ही मिली। लेकिन फिर भी वह हतोत्साह नहीं हो रहा है। पुष्पा बोली "निर्मल! तुम्हीं दिया जलाओ और उसकी एक लौ मेरी चिता में लगा देना।" निर्मल उदास दूसरे कमरे में चला गया और दीप-माला सजाने लगा। वह सोचता—'क्या पानी से दिया नहीं जल सकता! काश! जल पाता तो वह अपने आँसुओं से दिया जलाता।'

पुष्पा करवट बदल रही थी। मृत्यु आती है तो मनुष्य इसी तरह करवटें बदलता है। न जाने इस समय वह एक अजीब उलझन में क्यों फँस रही है। क्या वह आज़ादी का दीपक जलाए? उसी आज़ादी का जिसने उसकी मांग को जला दिया? क्या वह भारत की आज़ादी की खुशी मनाए, जिसमें उसकी इज्जत पर छापा मारा गया। नहीं ·····वह नहीं मनाएगी ·····क्यों मनाए·····! मगर उसी आज़ादी के लिए तो उसके राजन ने अपनी जान कुर्बान कर दी थी। उसका सुहाग लुट गया तो क्या हुआ? भारतमाता की माँग तो सिन्दूर से भर गई। हाँ, विधवा बेटी का कर्त्तव्य है कि सुहागिन माँ की खुशी में खुश हो। उसकी चूड़ियाँ टूट गईं तो क्या हुआ, माँ तो गुलामी की जंजीर से छूट गई। उसने देखा भारतमाता गोद में राजन को लिए उसी की ओर चली आ रही है। वह पलंग से उठ खड़ी हुई और दौड़ी, मगर वह गिर पड़ी और बेहोश हो गई। जब उसे होश आया तो अपने को पलंग पर पाया। उसने कहा "निर्मल! मुझे खिड़की के नज़दीक ले चलो"। उसने देखा बाहर शहर में दिवाली की-सी जगमगाहट है। सैकड़ों दीपक की जगमग-जगमग के

सामने तारों की ज्योति मन्द पड़ गई है। मगर इस समय सूर्य भी निकल आए तो शायद उसकी किरणें भी आज़ादी के दिए के सामने मात खा जाएँ। न जाने क्यों उसका दिल नाच उठा, और वे हज़ारों दिए भी नाचने लगे। उनका नाच एक घेरा बन गया, आग का घेरा जिसके बीच में वह और उसका राजन खुशी से नाच रहे हैं। जैसे तारों के बीच में चाँद, जैसे कमल के पत्ते पर नन्हीं नन्हीं बूँदों के बीच कमल की कोमल कली, जैसे ····· और वह सैकड़ों जैसों में खो गई।

पुष्पा चिल्लाई "निर्मल! आज १५ अगस्त है। मैं आज दिया जलाउँगी। मुझे सहारा दो। मैं आज दिया अवश्य जलाउँगी।" दूसरे क्षण वह एक दीपक जला रही थी। दीपक जल उठा। अँधेरी कोठरी में रोशनी फूट पड़ी। कहा नहीं जा सकता कि उसके मन का अंधकार दूर हुआ या नहीं। निर्मल ने कहा "भाभी! चलो अब सो रहो, एक दिया तो जला ही चुकी।" पुष्पा बहुत जोर से हँसी और बोली "पगले! दो और जलाने दो, मुझे दो बीते वर्षों की आज़ादी भी तो मनानी है। मैं आज तीन दिए जलाउँगी, अगस्त का दिया, आज़ादी का दिया और अपने भारत का दिया। सुना तुमने! आज मैं तीन दिए जलाउँगी १९४७, १९४८ और १९४९ की आज़ादी के दिए। मैं खुशी से पागल हो रही हूँ। निर्मल तुम भी खुशी मनाओ। नाचो, कूदो और आकाश को सर पर उठा लो। मैं आज तीन दिए जलाने जा रही हूँ। एक उजड़े सुहाग की याद में, दूसरा सतीत्व के मातम में और तीसरा अपने प्यारे भारतवर्ष के लिए। मैं····· आ·····ज·····।" और वह मूर्छित हो कर गिर पड़ी।

कमज़ोरी जो बढ़ रही थी। तीनों दिए जल उठे और उसके बाद बहुत से दिए भी जल उठे।

१५ अगस्त की पहली किरण स्वतन्त्र भारत की धरती पर पड़ी। उधर स्वतन्त्र भारत का सूर्य उठ रहा था और इधर पुष्पा की जीवन-ज्योति मन्द पड़ती जा रही थी। पुष्पा के कमरे की खिड़की से सूर्य की तीन किरणें आकर फ़र्श पर बिखर गईं और किरणों के मार्ग पर पुष्पा का सुहाग, सतीत्व और ज़िन्दगी लग गई।

★

लाल गुब्बारे

बिन्दु खिड़की बन्द करना भी भूल गई। वह भूल गई कि रिमझिम फुहियाँ उसका बिछावन भिंगो रही हैं। रेडियो पर कोई गा रहा है। कितनी आहें हैं उस गीत में, जो बिन्दु के मन-वीणा के तारों को अनायास ही झंकृत कर रही हैं। बिन्दु ने एक अँगड़ाई ली—कसमसा कर। उसके दिल में उठते हुए अरमानों और उमंगों की स्पष्ट छाप है उस अँगड़ाई में। पानी की बूँदें खिड़की से आकर बिन्दु के रेशमी बालों को भिंगो रही हैं। उसने हाथ के झटके से बालों की लटों को गालों पर से हटा दिया, जिसे सावन की बलखाती हवा ने गोरे गोरे चेहरे पर बिखेर दिया था। वह सोच रही है कि क्यों उसकी आँखें आँसुओं से भरी रहती हैं। जब भगवान ने उसका आँचल संसार के सारे ऐश्वर्य से भर दिया है तो भी वह

क्यों उदास रहती है। शायद इसलिए कि उसका पति बूढ़ा है। किन्तु उसे देख कर कोई बूढ़ा नहीं कह सकता। वह तो मिट्टी का मजबूत है। उसका पति उस पर अपना सब कुछ लुटाने को तैयार रहता है। क्यों न लुटाये! अपनी जवानी नहीं तो दूसरे का उमड़ता हुआ शबाब तो उसका है। बिन्दु की आँखें ऊपर उठीं। सम्भवतः यह देखने के लिए कि रेडियो का वह दर्द भरा गीत सफ़ेद छत से टकरा कर वापस भी आता है या·····। उसकी आँखें दीवार के कोने पर जा कर रुक गईं, जहाँ उसके वृद्ध पति का चित्र टँगा था। उसकी आँखें छलछला आईं। दूसरे ही क्षण उसकी नज़र पति के चित्र से हट कर अपने चार साल के नन्हें लाडले की तस्वीर पर आई और छलछलाई आँखों के ढुलमुल आँसू नीचे ढुलक गए। उसके मुँह से एक ठंडी आह निकल गई—उसकी कलाइयों में चूड़ियाँ खनकीं जब वह बच्ची थी, और यौवन में वही चूड़ियाँ टुकड़े-टुकड़े हो कर रह गईं। सावन-भादो की बिजली की तरह कभी कभी प्रसन्नता से चमक उठने वाली आँखों में आज सावन-भादो की झड़ी भी लगी थी।

विधवा होने के पहले ही वह माँ बन चुकी थी। वह नन्हा और सुन्दर बच्चा! वही तो उसके जीवन और मृत्यु को जोड़ने का एक सुन्दर साधन था। किन्तु क्रूर काल ने उसे भी छीन लिया। कितना सुन्दर बालक था। वह चार वर्षों तक जीवित रहा, किन्तु एक दिन भी वह उसे दूध न पिला सकी। कैसे पिलाती? उसका दूध मनहूस जो हो चुका था। समाज कहता है—माँग उजड़ जाने से दूध भी मनहूस हो जाता है—कहीं दूध पिलाने से उसके उजड़े सुहाग

की नहूसत बच्चे पर भी न छा जाए।

बच्चे को गोद में लेकर प्यार करने और चुमकार कर खेलाने का अरमान लिए वह दूसरे घर की स्वामिनी बन कर चली आई। वह नन्हीं-सी तुतली भाषा में बातें सुनने की अभिलाषा लिए अपनी उजड़ी माँग को फिर से भरने सेठ रामदास के यहाँ चली आई, और अब उसे एक लड़का भी था। जवान और सुन्दर—बड़ी-बड़ी आँखोंवाला। सौतेला है तो क्या हुआ? अब तो वही माँ है और वही उसका बेटा। आँखों से आँसू की एक गर्म बूँद उसके ठंढे हाथ पर गिरी। रेडियो बन्द हो जाने से एकाएक उसका सपना टूटा। वातावरण अपनी पूरी सचाई के साथ उसके सामने आया। दूसरे क्षण उसका सौतेला लड़का प्रशान्त अन्दर आया। और यह कहता हुआ खिड़की बन्द करने लगा—'माँ! ऐसा भी क्या अपने आप में ही खोए रहना कि खिड़की खुली है, बिछावन भींग रहा है और तुम हो कि न जाने क्या सोच रही हो।' और वह जोर से हँस पड़ा। बिन्दु को ऐसा लगा कि उसका बिछुड़ा हुआ लड़का हँस रहा है। कुछ देर बाद वही हँसी एक भयानक अट्टहास बन कर उसे डराने लगी।

प्रशान्त बिन्दु के रैक से "ठंढी चाय" निकाल कर वहीं खड़ा-खड़ा पन्ने उलटता रहा और अपने पलंग पर पैर हिलाती बैठी हुई बिन्दु एक टक उसकी ओर देखती रही। कैसा जवान और प्यारा है यह—बिन्दु का कलेजा खुशी से फूल गया। उसकी आँखों में एक नई चमक मुस्कुरा उठी। प्रशान्त ने पूछा—'क्या देख रही हो माँ अपने प्यारे बेटे में? तुम्हारी आँखों में एक प्यास झाँक रही है।

क्या मुझसे वह प्यास नहीं बुझ सकी ? प्यार की प्यास ...... ।
बिन्दु की आँखें नीची हो गईं और माथे पर पसीना की बूँदें चमकने लगीं, ऐसा मालूम होने लगा कि उसे किसी ने बहुत ऊँचे पहाड़ से समुद्र में फेंक दिया और वह बहती चली जा रही है। प्रशान्त बाहर चला गया और बिन्दु जीवन की पहेलियाँ सुलझाती रह गई।

अपनी कोठरी में बैठी बिन्दु चाँद को देख रही थी। और तब उसका अपना नन्हाँ चाँद याद आ गया। नीले आकाश पर बादल के कुछ सफेद टुकड़े मिल-मिलाकर एक औरत की शक्ल में परिवर्तित हो गए जिसकी गोद में एक बच्चा है। वह इसे देखती रही, देखती रही कि काले बादल के एक टुकड़े ने उसे ढांक लिया। उसके मुँह से निकल गया—'यह ज़ालिम रात भी आती है बिछुड़ों की याद दिलाने।'

आधी रात हो चली थी। चारो ओर सन्नाटा छाया था। बिन्दु पलंग पर बेचैनी से करवटें बदल रही थी। कभी वह ठंढी साँसें लेती, कभी नर्म मुलायम तकिये को अपने सीने से दबा लेती। मालूम होता जैसे वह तकिया का गला घोट रही है। करवट पर करवट बदलती, बिछावन पर सिकुड़न पड़ जाती। वह उठ कर उन्हें दूर करती, फिर वही तड़प। ज़ोर से उसने प्रशान्त को पुकारा। वह घबड़ाया हुआ कमरे में आया और उसका हाथ बिजली के बटन पर गया। लेकिन धीमी आवाज़ में बिन्दु ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। पलंग पर लेटी हुई जवान औरत बिल्कुल औरत के रूप में थी। प्रशान्त का सारा शरीर काँपने लगा। बिन्दु ने कहा—'आओ

प्रशान्त, यहाँ आओ'। प्रशान्त दो क़दम आगे बढ़ा और फिर एक क़दम पीछे हट गया। उसने काँपते स्वर में कहा—'माँ! पंखा खोल दूँ?' बिन्दु ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—'तुम्हें भी गर्मी मालूम हो रही है तो खोल दो।' दूसरे क्षण सारे कमरे में हवा फैल गई। इसने बिन्दु के शरीर में एक बिजली-सी पैदा कर दी। प्रशान्त की गर्मी और बढ़ गई। वह मूर्त्तवत् खड़ा रहा। फिर साहस कर बोला—'क्यों बुलाया था माँ?' और बिन्दु ने कहा—'यहाँ आओ तो बताऊँ।' और उसकी आँखें चमकने लगीं और साथ साथ झपकने भी। प्रशान्त आकर पलंग पर बैठ गया, बैठ क्या गया गिर पड़ा। ऐसा मालूम होता था जैसे वह सैकड़ों मील की यात्रा पूरी कर आ रहा हो। और बिन्दु ने उसका हाथ पकड़ कर बैठा लिया। वह उसकी गोद में जा रहा। उसकी आँखें खुली की खुली रह गईं। वह नहीं समझ सका कि आखिर यह सब क्या हो रहा है। उसके मुँह से एकाएक निकल गया—'माँ, यह सब क्या कर रही हो तुम? मेरी दिवानी माँ!' और वह अचेत बिन्दु की यौवनपूर्ण बाहों में बँध गया।

बिन्दु ने उसे जी भर कर प्यार किया। न मालूम कितनी बार उसने उसे चूमा होगा। बिन्दु अपना ब्लाउज़ खोलने लगी। परीक्षा कठिन थी। वह अपने सफेद जालीदार ब्लाउज़ के बटन खोल रही थी। मस्त यौवन के कारण तीन बटन खोलने के बाद चौथा स्वयं टूट गया। प्रशान्त ने देखा जवान औरत की 'औरत' को, जिसे वह कभी पुस्तकों में पढ़ा करता था। उसने देखा उसके सम्मुख अग्नि की लपट चल रही है। वह टूटा हुआ एक बटन उसके गाल

पर आकर गिरा। उसने अनुभव किया कि किसी ने उसके गाल पर एक गर्म लोहा रख दिया और झटके के साथ उसने उस बटन को नीचे फर्श पर फेंक दिया। बिन्दु ज़ोर ज़ोर से साँस ले रही थी और उसकी आँखें टँगी थीं अपने चार साल के बच्चे के फोटो पर। आँसुओं से आँखें भींगी थीं और पसीना से शरीर। उसने प्रशान्त से कहा—'आओ बेटा, मेरे हृदय से लग जाओ, मेरी छाती में मुँह लगाओ।' प्रशान्त की रही सही शक्ति भी गुम हो गई। वह भाग जाना चाहता था। लेकिन ताक़त जवाब दे चुकी थी। बिन्दु ने भर्राए स्वर में कहा—'बेटा प्रशान्त; मैं तुम्हारी माँ हूँ।' और तब उसने अपना मुँह बिन्दु की छाती में लगा दिया। बिन्दु ने फ़ोटो को देखते हुए कहा—'बेटा, तुम इतने बड़े हो गए!'

प्रशान्त केवल अपनी माँ को एक टक देखता रहा—वह स्वर्गीय माँ के प्रतीक को यहाँ देख रहा था। बिन्दु फिर बोली 'अच्छे बेटा, ज़रा तुतली भाषा में कहो तो 'मम्मा! लाल गुब्बारे दो' और प्रशान्त गद्‌गद् स्वर में बोल उठा 'मम्मा! लाल गुब्बाले दो' और ऊपर तस्वीर मुस्कुरा रही थी।

★

मेम साहब

उसकी गोरी-गोरी, पतली-पतली नर्म अँगुलियाँ सुन्दर प्यानों के सफेद रीडों पर तीव्र गति से दौड़ रही थीं। कितनी गति थी उन नुकीली अंगुलियों में, जैसे हृदय के स्पन्दनों से बाज़ी मार लेना चाहती हों। प्यानों के मदभरे स्वर से वह मदमाती हो रही थी। यौवन की मादकता से भरपूर उसकी आँखें शबाब की हज़ारों अंगड़ाइयाँ अपने में छुपाए आधी बन्द आधी खुली झुकी थीं। और उन आँखों का नीचे झुका ही रहना उचित था।

वह देख रही थी अपनी उँगलियों को, जिनके नाखून लाल थे। नाखून की वह लाली रीडों की सफेदी पर कितनी भली मालूम होती थी। वह सफेदी और लाली के खेलों को एक टक देख रही थी। और दूसरे क्षण उसकी दृष्टि अपने गोरे चिकने शरीर पर गई जहाँ

लाल गाउन शाम के सूरज की रोशनी पीनेवाले सरोवर की तरह लहरा रहा था।

उसकी दृष्टि उठी और एक उन्मत्त अँगड़ाई लेकर उसने अपनी उँगलियों को मखमली भूरे बालों में उलझा दिया। आज वह उँगलियों की तरह उलझना चाहती थी, सुलझना चाहती थी और फिर उलझना भी। उसकी दृष्टि प्यानों के उस हिस्से पर जा कर टँग गई जहाँ बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—'*Made in England*' उसके होठों पर एक आह आई और थरथरा कर रह गई। वह बोल उठी—'माई डार्लिंग इङ्गलैंड।' उसने एकबार ज़ोर की अँगड़ाई ली; जैसे शरीर के कसमसाहटों में शलभों के अरमान और जलन समेट लेना चाहती थी। उसके बाल चेहरे पर आ रहे थे। उसने एक ज़ोर के झटके के साथ अपना बौब हेयर बगल में फेंक दिया और पीछे घूम कर देखा आया कुछ लिये द्वार पर खड़ी थी। डोरा ने पूछा—'क्या है आया?' आया अन्दर आई और प्यानों पर एक रंगीन लिफ़ाफ़ा रख कर चली गई। डोरा ने लिफ़ाफ़ा उठा लिया और न जाने क्यों क्रोध और घृणा के मिले-जुले स्वर में उस पर लिखा पता पढ़ा—'मिस्टर सन्तोष पाल·····।'—'हाज़िर हूँ, कहिये क्या आज्ञा है मिसेज़ डोरा?' मुस्कुराते हुए संतोष अन्दर आया और डोरा के हाथ से लिफ़ाफ़ा लेकर बोला—'हाँ, यह तो मेरा ही पत्र है। मिस्टर सन्तोष पाल, बार-एट-लॉ; रुक्मिणी बाग़, क्लब रोड, मुज़फ़्फ़रपुर।' सन्तोष ने पढ़ कर उसे जेब में रख लिया। डोरा की आँखें ऊपर उठीं और सन्तोष की नीचे झुकीं। दोनों मुस्कुरा

पड़े। क्या उन दोनों के दिल भी मुस्कुरा रहे थे? यदि दो प्रेमभरे दिल आपस में मिलते हैं तो होटों पर फीकी नीरस मुस्कान की रेखा नहीं दौड़ा करती। उन उठी हुई आँखों में झूठे प्रेम की चमक थी और उन झुकी हुई आँखों में प्रेम की उष्णता। उन उठी हुई आँखों में तीर थे जो केवल घायल करना जानते थे और उन झुकी हुई आँखों में रिसते हुए घाव पर रखने योग्य रूई का फाहा। एक की आँखें मस्तिष्क की थीं और दूसरे की हृदय की। आँखों आँखों में इतना अन्तर! हृदय हृदय में इतनी दूरी!

एक बार फिर उसकी उँगलियाँ रीडों से खेलने लगीं। वह मस्ती में झूम-झूम कर प्यानों बजाने लगी। वह आज अपना सब कुछ मधुर संगीत में जैसे गँवा देना चाहती थी। 'डोरा! मिस्टर शुकदेव ने यह निमन्त्रण-पत्र भेजा है।' सन्तोष ने कहा, लेकिन डोरा ने सुना नहीं। सन्तोष के स्वर से प्यानों का स्वर उसके कानों में कहीं अधिक रस घोल रहा था। वह एक बार फिर बोला—'तुमने सुना नहीं, मिस्टर ·····।' वह बिगड़ कर बीच ही में बोल उठी—'मैं बहरी नहीं हूँ, सुन रही हूँ। क्या लिखा है उस कार्ड में?' सन्तोष के लिये यह तीखी अदा अनोखी न थी। अभ्यस्त सन्तोष कहता गया—'यहीं के नवीन-कला मन्दिर का वार्षिकोत्सव है, देश के सुप्रसिद्ध कविगण और गायक आ रहे हैं। मिस्टर शुकदेव प्रसाद ने हम दोनों को आमन्त्रित किया है। चलोगी न!' डोरा ने भौंहें सिकोड़ लीं और रूखे अन्दाज़ में बोली—'सब बकवास है। क्या वार्षिकोत्सव और क्या आर्टिस्ट गैलरी। दो-चार मिट्टी के खिलौने

रख दिए गए और आर्ट-गैलरी हो गई। इधर-उधर के कुछ गाने गा दिये और म्युज़िक-सेक्शन हो गया। मैं तो न जाउँगी। और देखिए, परसों तो मेरे क्लब में ख़ास तौर से कन्सर्ट होने जा रहा है। मुझे तो क्षमा कीजिए।' एक ही साँस में वह बोल गई। वह कहीं रुकी नहीं। डोरा तो स्वयं तरकश थी जिसमें केवल तीर ही थे। तीर चलते गए, सन्तोष तिलमिलाता गया। वह विष की घूँट पी कर रह गया। यों सन्तोष के बाजुओं में ताक़त थी और एक तमाचा पर्याप्त था डोरा का मुँह बन्द कर देने के लिए। एक कड़ी नज़र काफ़ी थी उस सर-फिरी लड़की को ठीक कर देने के लिये। लेकिन कला और सभ्यता के बीच खड़े सन्तोष की आँखों में पानी था और उसमें इज्ज़त की नमी। उसी के सामने उसके निश्छल मित्रों का अपमान किया गया। उसी के सामने कला के उपहास में शब्द निकले। डोरा उसकी जीवन-संगिनी थी, नहीं तो सन्तोष आज वह कर बैठता जो न करना चाहिये था।

'नवीन-कला-मन्दिर' कला और सौंदर्य का जीता-जागता नमूना। इस मन्दिर में पाषाण नहीं वरन् काग़ज़ों के माध्यम से अमर आत्माएँ पूजी जाती हैं। इस मन्दिर में घी के दिए नहीं वरन् साज़ों के तारों पर थिरकती हुई अन्तर्ज्योति जगमगाती है। यहीं गायक अमर हो जाते हैं। यहीं शहीदों के मज़ारों पर श्रद्धा के फूल चढ़ाये जाते हैं और यहीं अमर कला की झलक मिलती है। एक वर्ष बाद फिर इस मंदिर के द्वार खुले थे और द्वार पर खड़े थे इसके व्यवस्थापक श्री शुकदेव श्रीवास्तव और सुरेंद्र सहाय वर्मा। मेहमानों को कला की उच्च कृतियों

ठंढी चाय—

से ये परिचित करा रहे थे।

इन दोनों की निगाहें चंचल क्यों थीं? क्यों यह दोनों दूर देख रहे थे? सम्भवतः इन दोनों की आशाओं में गुँथे मोती कहीं वह बिखर गए थे। हाँ, मोटर आई और नवीन-कला-मन्दिर के द्वार पर रुकी। तीन मोती उतरे। संतोष पाल, डोरा और डोरा का एक क्लब का मित्र मिस्टर टौमस स्वामी। इसमें नक़ली मोती भी थे।

यह मन्दिर का चित्रकारी-विभाग था। यहाँ रंगों के खेल होते थे और यहाँ की दुनिया भी रँगी हुई थी। पनघट पर जाती हुई गोरियों की साड़ियाँ रँगी मिलती थीं। यहाँ चित्रकारों के हृदय के रक्त से रँगी हुई पाश्चात्य तितलियों के होठों की लालिमा मिलती थी। शुकदेव जी ने हँसते हुए मिसेज़ डोरा से कहा—'यह नन्दलाल बोस की एक अमर कृति है और यह दूसरी पंक्ति में जो पहला चित्र है अब्दुल रहमान अजीज़ की एक न भूलने वाली चीज़ है। शायद आपने इन्हें पसन्द किया।' लेकिन मिसेज़ डोरा जो सदा से यह समझती आई थी कि उसका भारतवर्ष के वातावरण में साँस लेना भारतवर्ष के कन्धे पर एक बहुत बड़ा एहसान था नाक सिकोड़ कर बोली—'हाँ, है। पर कॉमरेड टौमस, ऐन्डरेडेरीन की पेन्टिंग 'लैंड-स्केप इन सदर्न फ्रांस' इससे कहीं अच्छी है।' टाई ठीक करते टौमस ने कहा—'हाँ मैडम इन दोनों में कोई कम्पेरिज़न नहीं।' यह सन्तोष के चोट खाए दिल पर एक और चोट थी और वह माथे से पसीना पोंछते वास्तु-कला-विभाग में गया। वह ताजमहल को एक टक देखने लगा संभवतः यह उसी की भावनाओं का प्रतीक था। संभवतः यह उसकी

आँसुओं की शीतलता थी। अकस्मात् उसके मुँह से निकल पड़ा—'वाह, ताज तू सचमुच दुनिया का ताज है।' मिसेज़ डोरा का आलोचक जाग उठा। उसके अन्दर की दुनिया बोल उठी—'नॉनसेन्स, जब आपने चर्च ऑफ सेन्ट क्लेमेंट डेन्स देखा ही नहीं तो क्योंकर ताजमहल को दुनिया का ताज बताते हैं। एक बार सर क्रिस्टोफर रेन के बनाये हुए इस भवन को देखिये तो झूम जाइयेगा।' इस बार संतोष के माथे पर पसीना नहीं चमका, लेकिन होठ दाँतों तले अवश्य आ गए और इस विभाग के संचालक के होठों पर एक पतली हल्की मुस्कान नाच गई। संतोष ने अनुभव किया कि यह मुस्कुराहट नहीं, मूर्तिमान व्यंग्य है जो उसके हृदय को छेदता चला जा रहा था और वह चिल्ला भी नहीं सकता था।

सन्तोष का हृदय बीमार था। वे कीटाणु उसके शरीर को भी खाने लगे और उसकी आशाएँ टूट गईं। वह केवल इसलिए जीवित था कि डोरा के इन कटु व्यवहारों का कोई आधार तो होना ही चाहिए। कितना रंगीन था उसका स्वप्न और कितना भयानक है उसका विश्लेषण! सन्तोष का यौवन उस हृदय-विदारक विश्लेषण का शिकार बन कर रह गया। डोरा थी कि सन्तोष को तड़पा तड़पा कर मार डालने का संकल्प कर चुकी थी और ज़ालिम मौत उसे ले जाना नहीं चाहती थी। इसी खींचतान में वह अपनी दयनीय दशा पर आंसू बहाता जीवन की घड़ियाँ गिन रहा था।

आज सन्तोष अत्यन्त व्याकुल था। तबाह और बर्बाद भी था। वह पलंग पर तकिये के सहारे लेटा दूर उद्यान के पथ पर एक बाबू के

जूते से कुचली हुई कली देख रहा था। वह देख रहा था, न उसकी सम्वेदनाओं में उष्णता थी और न शरीर में गति। वह एक टक क्षितिज के उस पार देख रहा था। वह उस मूर्ति के सदृश था जिसे किसी मूर्त्तिकार ने अपनी छेनी की लगातार चोटों से पत्थर से इंसान बना दिया था और आज सैकड़ों छुरियों की नोकों से एक ज़ालिम उसे मिटा रहा था। डोरा फूलों के कुंज में बैठी सिंगार कर रही थी और कुछ दूरी पर माली की सुन्दर, भोली बेटी शान्ति डोरा की प्रत्येक गति का निरीक्षण कर रही थी। उसकी आँखें साफ़ कह रही थीं कि वे प्यासी हैं। डोरा के सिंगार का वह दृश्य उसकी आँखों में विलायती रस घोल रहा था। न जाने क्यों जब डोरा अपने गोरे गालों पर पाउडर मलती तो शान्ति के कपोल भी लाल हो जाते और एक कँपकँपी-सी उस पर छा जाती। वह सोचती, अगर वह डोरा हो जाती तो इठलाती मचलती और तब ..... । सन्तोष की आँखो से दो आँसू गिरे और चादर में लुप्त हो गये। कोई आँसू पोंछनेवाला न था।

सन्तोष का संसार में अपना कोई न था और जो पराया था वह भी चल दिया। आबादी ने तो उसका साथ कब का छोड़ दिया था और बर्बादी ने भी अपना मुँह फेर लिया। डोरा चली गई, हिन्दुस्तान की हवा रास न आई उसे। वह चली गई, शायद उसका गाउन हिन्दुस्तान की धूल से गन्दा हो रहा था। ठीक कहा है किसीने 'इंसान अकेला आता है और अकेला जाता है'। सन्तोष अकेला आया था और शायद अकेला चला भी जाएगा। धूप-छाँह की तरह बहुत लोग उसके जीवन में आए और चले गये।

शान्ति अपने मालिक के गिरते हुए स्वास्थ्य को अधिक दिनों तक न देख सकी। वह न देख सकी ऐसे नेक आदमी का जीवन मिट्टी में मिलते। वह रो पड़ी। उसका दिल भी भर आया और आँखें भी। वह सोचने लगी काश! वह अपने मालिक के किसी काम आ सकती, अपना जीवन देकर भी वह सन्तोष का जीवन बचा पाती। लेकिन वह औरत थी और जवान भी। समाज की उँगली उठने से कौन रोक सकता था? उसका बस चले तो भाई बहन के रिश्ते को भी संदेह की दृष्टि से देखे और वह तो ..... । बहुत दिनों से वह सोच रही थी लेकिन कोई उपयुक्त समाधान नहीं मिल रहा था। कितनी चाँदनी रातें केवल यह प्रश्न सोचने में उसने समाप्त कर दीं। वह करवट पर करवट बदलती लेकिन इससे किसी के अरमान पूरे होते हैं! वाध्य होकर अपने दाँतों तले होठ दबा लेती लेकिन इसके दबाने से उमंग भी कभी दब पाई है! वह पूरा निश्चय करके अपने पिता के पास जाती, फिर भी बिचारी कह नहीं पाती। कैसे कहे भला! उसका पिता भी तो उसी समाज का ही एक जीव था। नाले का पानी क्या जाने समुद्र के ज्वार को? जो सरिता सूख चली हो, वह क्या जाने निर्झर के उस वेग को जो पत्थर के हृदय को चीरता हुआ आगे बढ़ता है!

शान्ति समाज से क्रांति कर बैठी। वह सन्तोष का घर बसा रही थी। शमा को मोम मिला और वह तेज़ जलने लगी। आकाश से शबनम गिरी और कली ने अपना मुँह खोल दिया। सन्तोष को एक बार फिर जीने का अवसर मिला, अवसर मिला मुस्कुराने का, कुछ

हँसने का और कुछ हँसाने का, और अवसर मिला अपने दिल की लगी समझने का और समझाने का। उसकी सोई उमंगें इस मादक अँगड़ाई से जाग उठेंगी उसे मालूम न था। आशा की एक कोमल चोट उसकी बर्बादी की चट्टान को इस तरह तोड़ देगी वह सोच न सका था। शान्ति उसकी थी और वह शान्ति का। चाँद शान्ति का था और चाँदनी सन्तोष की, फूल सन्तोष का था और सौरभ शान्ति का, अरमान शान्ति के थे और उसकी गर्मी सन्तोष की। और इस प्रकार दोनों जीवन व्यतीत करने लगे।

आज सन्तोष अति प्रसन्न था। प्रसन्नता से भी अधिक प्रसन्न। लगता था सारे संसार की प्रसन्नता उसी में सिमट कर चली आई है। वह बिछावन पर लेटा शान्ति की तस्वीर लिए कुछ गुनगुना रहा था। सम्भवतः उस चित्र से कुछ बहकी बहकी बातें कर रहा था। सम्भवतः उस चित्र की मूक नयनों की कथा का शीर्षक ढूँढ़ रहा था। उसका हृदय खो गया था और उन मदमाती नयनों में वह उसे खोज रहा था। सम्भवतः वह अपनी संवेदनाएँ कहीं गँवा बैठा था और उसे वह उस चित्र की उभरी उभरी रेखाओं में ढूँढ़ रहा था। उसने कनखियों से देखा शान्ति द्वार पर सहमी खड़ी थी। उसका मस्तक झुका था और आँखें उठी थीं। वह सन्तोष के समीप आना चाहती थी और उस कमरे से भाग भी जाना चाहती थी। आखिर यह अन्तर्द्वन्द्व क्यों? वह लौटने के लिए मुड़ी। 'इधर आओ, शान्ति! मेरे पास'—सन्तोष ने मुस्कुराते हुए कहा। शान्ति कुछ घबड़ा गई जैसे चोरी करते पकड़ ली गई हो, वह डर गई जैसे किसी भयंकर जिन ने

अपने लम्बे लम्बे नाखूनों को उसकी ओर बढ़ा दिया हो। सन्तोष ने पूछा—'क्या कुछ कहना चाहती हो ?' शान्ति के मन की बात जैसे वह जान गया हो। 'हाँ'—उसके स्वर में अनुग्रह था, घबड़ाहट थी और स्त्री-सुलभ लज्जा भी। 'तो कहो न !'—सन्तोष ने शरारत से कहा और उसकी ठोड़ी उठा कर अपनी आँखें उसकी आँखों में गाड़ दीं, और तब एक कहानी बन गई। मैं डोरा मालकिन की तरह 'मेम साहब' बनना चाहती हूँ। क्या आप मेरी मदद करेंगे ?' सन्तोष किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। वह घबड़ा गया कि बिजली को उसके घोंसले का पता कैसे मिल गया ? उसे लगा कि किसी दानव ने एक भारी चट्टान उसके सिर पर दे मारा है। वह बोल उठा—'हाँ, शान्ति ! तुम 'मेम साहब' बनोगी। मैं अपने ही हाथों अपनी चिता सजाऊँगा। हाँ, तुम तितली बनोगी, शान्ति। रंगीन तितली।'

दो वर्ष बीत गए। सन्तोष की खुशी चली गई। इन दो वर्षों से वह अपने आस्तीन में साँप पालता आया था। इन दो वर्षों में मर मर कर जीना सीखा था उसने, सीखा था अपनी खुशी लुटाकर उस पर हँसना। वह ऊँची पहाड़ी पर खड़ा अपने दोनों हाथों को उठाए, देनेवाले से तबाही और बर्बादी माँग रहा था। वह घसीट घसीट कर उस मन्दिर में जाकर पत्थर पर अपना सिर फोड़ लेना चाहता था जहाँ पीड़ितों को वरदान मिलता है। वह भी चाहता था कि ईश्वर उस पर कृपा करे और उसे तबाह कर दे। उसने रात की नींद और दिन का चैन हृदय की प्रसन्नता और आँखों के आँसू भावनाओं का छोह और जीवन का मोह; सब गँवा कर शान्ति को 'मेम

साहब' बना दिया। शान्ति बहुत खुश थी और सन्तोष भी। लेकिन एक की आँखों में चमक थी और दूसरे की आँखों में .... !

× × ×

क्लब की वासन्ती बहार। प्रेम और वासना का गुनगुनाता समाँ। समाज आपादमस्तक एक नग्न नर्त्तकी-सा खड़ा था। ऐश्वर्यशाली बत्तियाँ जगमगा रही थीं, इस कोशिश में कि इनकी चकाचौंध वहाँ की काली करतूतों को अपने में छिपा ले। यह प्रकाश सभवतः कहीं अंधकार को भी उजाला कर दे। क्लब के कमरे हँसी से गूँज रहे थे। लहराती हुई साड़ियों और नाम के ब्लाउजों की अँगरेजी खुशबू से हवा लदी थी। इस 'सभ्य' संसार की प्रत्येक वस्तु 'सभ्य' थी। यहाँ का यौवन निराला, उससे खेलने वाले निराले और यहाँ तक कि खेल की विधि भी निराली थी। शान्ति पूरी मेम साहब थी। हाथ में रैकेट, आँखों में मस्ती लिए उसने एक कमरे में प्रवेश किया और कुछ मित्रों के साथ शराब पीने लगी। वह शराब पी रही थी और झूम रही थी, झूम रही थी और शराब पी रही थी और साथ साथ सब झूमने लगे थे। आज शान्ति होश में न थी, सारा समाँ जो मदहोश थ। क्लब का वही सदस्य हो सकता था जो बेहोश होना जानता हो। जिसके पैर न लड़खड़ाए वह सोसायटी मैन कहाँ! शान्ति का एक मित्र आया और उसकी कमर में हाथ डाल एक कमरे में चला गया। मस्त थे दोनों। शराब का दौर चल रहा था। दोनों की पलकें भारी होती गईं और वे हल्के होते गए। वासना ने सिर उठाया और विवेक का सिर झुक गया। मित्र लपका और शान्ति से चिपक गया।

लेकिन शान्ति के भीतर की भारतीय नारी जाग उठी और उसने उसे एक ज़ोर का तमाचा मारा, और वह स्वय तिलमिला गई। उसका साथी कुछ न समझ सका।

शान्ति घबड़ा कर पगली-सी भागी। वह नहीं जानती थी कि मनुष्य इतनी दूर तक भी जा सकता था। वह नहीं जानती थी कि क्लब केवल वासना-तृप्ति का एक केन्द्र था। उसे क्लब की प्रत्येक वस्तु से घृणा हो गई। वह उसे जलाकर खाक कर देना चाहती थी। वह उन्मत्त-सी रास्ते में पड़ने वालों को धक्के देती बाहर निकल आई। उसकी आँखों से चिनगारियाँ फूट रही थीं और वह क्रोध से काँप रही थी। घर आकर उसने गाउन, रैकेट, वैनिटी बैग, लिपस्टिक इत्यादि सभी वस्तुओं को बाहर सड़क पर फेंक दिया। अनेक ऐसी वस्तुओं में उसने आग लगा दी जिसने उसे 'मेम साहब' बनने में सहायता की थी। वह पलंग पर गिर पड़ी और तकिये में मुँह छुपाकर फूट फूट कर रोने लगी। वह आज बहुत रोना चाहती थी। वह अपने आँसुओं से अपने निकट अतीत के पाप धो देना चाहती थी। आखिर वह एक भारतीय नारी थी। उसकी नस-नस में भारतीय रक्त दौड़ रहा था।

सन्तोष बाहर से आया और घर की इस बुरी दशा को देखकर घबड़ा गया। चीज़ें बिखरी पड़ी थीं, कपड़े जल रहे थे और शान्ति रो रही थी। सन्तोष ने पूछा—'यह कैसा दृश्य है ?' वह पलंग से कूद पड़ी और सन्तोष के कन्धों को झकझोर कर बोली—'तुमने तो मुझे मेम बना दिया, किन्तु यह क्यों नहीं बताया कि वहाँ इज्ज़त शराब

की क़ीमत बिकती है ? वहाँ औरतें जाती हैं तो सतीत्व बेचने। तुमने मुझे पहले क्यों नहीं कहा कि औरतें मेम इसलिये बनती हैं कि वहाँ वे खूब खुलकर खेलें। मैं नहीं जानती थी, पर तुम्हें तो बताना चाहिए था।' एक ही साँस में वह बोल गई, जैसे वह बोलती ही जाएगी। वह अपना मुँह सन्तोष के नर्म चौड़े सीने में छुपाकर सुबुक सुबुक कर रोने लगी। सन्तोष मुस्कुरा कर केवल यही कह सका—'वाह री, मेरी मेम साहब !

★

फिर बिजली कड़की

सुहानी रात थी। एक सप्ताह के पश्चात् आज वर्षा ने दम तोड़ा था। श्रीमती जी खर्राटे भर रही थीं और मैं एक सुन्दर स्वप्न देखते-देखते स्वयं एक सपना बन गया था। एकाएक बिजली कड़की और मैं कुछ सेकेन्ड तक हवा में लटका रहा। ऐसा मालूम हुआ कि पलंग मेरी पीठ के नीचे से सरक गया है और मैं परियों के देश में जा रहा हूँ। मेरा दिल साठ मील की रफ़्तार से धकधक कर रहा था और मैं बिदबिदाने लगा —'हे वरुणदेव! मुझ पर दया करो। मैं तुम्हारे चरणों में दो पैसों का बताशा, यदि बताशा पसन्द न हो तो दो रसगुल्ले, चढ़ाउँगा'। श्रीमती जी ने पूछा--'आखिर आप यह क्या बेढंगी बातें बके जा रहे हैं। आपका दिल ज़रा सी बिजली की कड़क से यों धकधक कर रहा है जैसे नीलाम में ख़रीदी हुई मोटर का इंजिन।

ठंढी चाय—

जब देखती हूँ आप अर्जुनारिष्ट, कॉड-लिवर-आयल और कैल्सियम का व्यवहार कर रहे हैं इस पर भी दिल मजबूत न हुआ। भीगी बिल्ली बने हैं। ' मेरी तो जान गले में अटकी थी और श्रीमती जी को मजाक की सूझ रही थी। जल ही तो गया उनकी वीरता का भाषण सुनकर और बोला—'अजी, उन दवाओं का कोर्स अभी समाप्त ही कहाँ हुआ है। आधा समाप्त हुआ है तभी तो मैं पलंग ही पर उछल कर रह गया नहीं तो ज़मीन पर न आ जाता। ज़रा फुल कोर्स तो खत्म हो ले, फिर देख लूँगा ऐसी-ऐसी बिज.....।' और फिर बिजली कड़की। दूसरे ही क्षण उनकी मखमली गोद में सिर रखे काँप रहा था। जल्दी-जल्दी हनुमान चालीसा पढ़े जा रहा था, जैसे मिडिल क्लास का विद्यार्थी परीक्षा की तैयारी कर रहा हो—'केले के पत्ते हरे और लम्बे होते हैं, पत्ते के केले हरे और लम्बे होते हैं।' मेरी नज़र खिड़की से होती हुई काली घनघोर घटाओं से घिरे आस्मान पर थी। जब बिजली चमकती चार बूँद रक्त सूख जाता और नॉर्मल पर आई हुई धड़कन फिर सौ डिग्री पर चली जाती और श्रीमती जी हँसी से लोट-पोट हो रही थीं। वाह साहब! चिड़िया की जान जाये और लड़के का खिलौना। मैंने कहा - 'अजी, फिर वही मजाक मेरा दम है कि निकला जा रहा है। भगवान को रात को भी नींद नहीं आती, बस बिजली कड़काने की सूझती है। ओ, हाँ, ज़रा आलमारी से दिल को मजबूत बनाने वाली टानिक तो देना।' श्रीमती जी फिर हँसीं और बोली—'अभी टानिक खाने से क्या होता है, उसका असर थोड़े ही होगा।' मैं चिढ़ गया और

बोला—'डाक्टर साहब ! आप विज्ञान कुछ दिन और पढ़िये। मैं कथाकार हूँ तो क्या हुआ, टानिक के बारे में मेरा बहुत वृहद् अध्ययन है। यह टानिक है जिसे पी कर हमारे एक मित्र ने चार गोरों को नाले में फेंक दिया था। मैं तुरत पलंग से उठा और आलमारी के पास जाकर जल्दी जल्दी दस घूँट दवा कंठ के नीचे उतार ली। फिर वही दिल की धड़कन। वह बोली—'अजी, आप बिजली की ओर देखते क्यों हैं? आँखें खराब हो जायेंगी।' मैंने जल्दी से आँखें बन्द कर लीं और देवी देवताओं को जपने लगा। फिर जोर से बिजली कड़की। यह अचानक कड़क तो बस मेरे लिये मौत ही थी। मैं जोर से उछल पड़ा। वह तो ख़ैर हुई जो उन्होंने मुझे सँभाला नहीं तो मैं नीचे और मुसहरी का डंडा मेरे ऊपर होता। मुझे इस बात का दुख न था कि एक डंडा टूट गया। मेरे बाजू से मेरी चहेती की ठोढ़ी में कुछ चोट लग गई। दिल को भुलाए रखने के लिये उनसे पूछा—'अच्छा जी, यह तो बताओ बिजली के गिरने से आदमी तो नहीं मरता!' और मैं उनका चेहरा देखने लगा कि वह तो कहेंगी ही कि आदमी क्या मरेगा। लेकिन मेरी आशा पर पानी फिर गया। रात काफ़ी सर्द थी, फिर भी माथे पर पसीना की बूंदें चमकने लगीं। मेरी अच्छी ने कहा—'आदमी मरते हैं, जी। क्या आपने इतिहास में नहीं पढ़ा है कि मीरजाफर के बेटे मीरन पर हाजीपुर में बिजली गिरी थी और वह वहीं ढेर हो गया था!' मैं चट से बोला—'तो वह आदमी नहीं रहा होगा।' लेकिन सच पूछिये तो मुझे काठ मार गया और मेरा दिल उस मोटर की पिस्टन रिंग की तरह धकधक करने

लगा जिसमें मोबिल आयल बहुत दिनों से न रखा गया हो। मैंने पूछा—'अच्छा, कोई ऐसा उपाय है जिससे बिजली हमलोगों पर न गिरे?' श्रीमती जी ने उत्तर दिया—'है क्यों नहीं। वह जो रेडियो रखा है न उस कोने में अगर उसका एरियल अर्थ के तार से जोड़ दिया जाये तो बिजली सीधे उस तार के द्वारा धरती में चली जायगी।' मैं बहुत खुश हुआ और उनको हज़ारों दुआयें देता हुआ ज़रा तन कर बैठा ही था कि फिर बिजली कड़की। मैं ज्यों का त्यों रह गया। श्रीमती जी ने झट दोनों हाथों से मेरे कान बन्द कर दिए। उन्होंने मेरा कान बन्द क्या किया, अच्छी-खासी कान उमेठ दिया। मैं ज़हर का घूँट पी कर लिहाफ़ के अन्दर खरगोश की तरह दुबका रहा।

मैंने बेगम साहिबा से प्रार्थना की "जाओ ज़रा रेडियो का तार तो जोड़ दो। जान तो बच जाएगी।" लेकिन उन्होंने यह कह कर साफ़ इनकार कर दिया—'आप ही जाइए। मैं भला नन्हीं सुषमा को छोड़ कर कैसे जा सकती हूँ?' डरते-डरते मैं ही गया तार जोड़ने। हाथ काँप रहा था, दिल धड़क रहा था। तार जोड़ना तो अलग रहा उसका स्विच ही औन कर दिया और इतनी ज़ोर से बिजली कड़की कि मालूम ऐसा हुआ कि मेरे सर ही पर तो गिरी है। श्रीमती जी तड़प कर आईं और मुझे सँभाला नहीं तो वहीं उलट गया होता। किसी तरह पलंग पर गया। जब कुछ होश आया तो मैंने उनसे पूछा—'क्या अच्छा हो कि तुम अपनी आभूषणों को टेबुल की दराज़ से निकाल कर यहीं ले आओ। मैंने सुना है धातु की वस्तुओं पर

बिजली जल्दी गिरती है। श्रीमती जी मुस्कुरा पड़ीं—'लकड़ी पर थोड़े ही बिजली गिरती है और दराज़ लकड़ी की है।' मैं खुशी से उछल पड़ा और बोला 'ठीक कहा तुमने। बच्ची को सम्भालो। चलो हम उस टेबुल के नीचे चल कर बैठें। बिजली गिरी भी तो टेबुल के ऊपर ही रहेगी।' लेकिन श्रीमती जी तैयार न हुईं और मैं अकेला ही टेबुल के नीचे जा कर बैठा। कमरे में अन्धेरा था, घुप अन्धेरा! फिर बिजली कड़की और मेरी गोद में आकर गिरी। मैं चिल्लाया—'देखती क्या हो, बेगम, दौड़ो बिजली मेरी गोद में गिर पड़ी। दौड़ो दौड़ो।' मेरे चिल्लाने से सारा घर जाग गया। पिता जी दौड़े हुए कोठे पर आये। शोर गुल मच गया। बिजली का लाइन बन्द था। बहन मोमबत्ती जला रही थी। पिता जी इधर-उधर मुझे कमरे में खोज रहे थे।

उनलोगों के कितने ही पुकारने पर भी मेरे गले से आवाज़ नहीं निकल रही थी। आखिर मोमबत्ती जली और सब लोग टेबुल के नीचे देखने लगे। इतने में एक काली बिल्ली मेरी गोद से उछल कर खिड़की की राह बाहर भाग गई।

धत्तेरी, बिजली की.....

सेल्यूलाइड की गुड़िया

डा० भार्गव ने सिर उठाया, निर्मल और दिलीप की आँखें उस पर टँग गयीं। दरवाजे पर लगे हरे पर्दे हिलने लगे और एक छाया पर्दे की ओट में टहलने लगी। कमरे में शान्ति छाई थी, केवल अनजानी चूड़ियों की खनखनाहट निस्तब्धता तोड़ने की बेकार कोशिश कर रही थी। भार्गव का हाथ रोशनी में उठा और साथ-साथ उठा ग्लास ट्यूब भी। उन दोनों के सिर भी उठे, लेकिन दिल बैठ गए। छाया एक जगह खड़ी हो गई और चूड़ियों की खनखनाहट भी। छः आँखें उस ट्यूब को निगल जाना चाहती थीं और दो अनजानी आँखें उन छः आँखों को पी जाने को तैयार थीं। निर्मल की आँखों में घटा छा गई, वह बरसने को ही थी कि उसने अपना चेहरा खिड़की की तरफ घुमा लिया। उसने एक नन्ही चिड़िया को

देखा जो खिड़की पर बैठी अपने बच्चे को दाना खिला रही थी। उसकी नजरें झुकीं और घटा बरस पड़ी। डाक्टर की निगाहें ट्यूब में चलते-फिरते नन्हें-नन्हें कीटाणुओं पर जमी रहीं। थोड़ी देर बाद बोला, 'कोई इलाज नहीं। बच्चा पैदा करने की इसकी शक्ति हमेशा के लिए खत्म हो चुकी है।' और वह बाहर चला गया। निर्मल का सिर झुका हुआ था और दिलीप निर्मल की बदक़िस्मती पर अफ़सोस करता हुआ दोनों हाथों को मल रहा था जैसे भगवान को पीस देना चाहता हो।

पुष्पा की माँग तो भरी थी परन्तु गोद सूनी थी। जीवन साथी तो बन गई थी लेकिन माँ बनने की खुशनसीबी उसे कहाँ नसीब? उसने अपनी गोद में तकिया रख बच्चा की तरह खिलाने में अपनी बहुत सी रातें गुज़ार दी थीं, लेकिन दिन की रोशनी में तकिया सिर्फ़ तकिया रहता। बहुत सी लम्बी कठिन रातों को बग़ल में सेल्यूलायड की बड़ी-सी गुड़िया रखकर सोते-जागते बिता दी थी उसने, लेकिन सुबह होते ही गुड़िया सिर्फ रात का अफ़साना बन कर रह जाती। बच्चे को चुमकार कर खेलाने के अरमान ने उसे दीवाना बना दिया था।

डा० भार्गव ने आज उसकी क़िस्मत का फैसला कर दिया और इस तरह उसकी खुशी का भी फैसला हो गया। वह बिछावन पर औंधे मुँह लेटी सिसक-सिसक कर रो रही थी। दूसरे कमरे में निर्मल छत की कड़ियाँ गिन रहा था और साथ-साथ दाँतों से छोटा सा तिनका भी काटता जाता। बाल उसके दिल की उलझनों की तरह उलझे थे और आँखें नम थीं। पुष्पा की नज़र दीवार पर

टँगी बालकृष्ण पर गई और दूसरे क्षण वह तस्वीर के नज़दीक जाकर चिल्लाई 'मेरे बेटे, मेरी गोद में आ। आओ न, अच्छे बेटे !' और वह फ़र्श पर गिर पड़ी।

पर्दे की ओट से दिलीप सब कुछ देख रहा था। उसने कृष्ण की तस्वीर उतार कर दूसरी जगह रख दी और पुष्पा को पलंग पर लिटाते हुए बोला, 'भाभी मत रोओ। क्या रोने से सूनी गोद भर जाएगी ? हिम्मत से काम लो। ऊपर वाला एक दिन ज़रूर सुनेगा।' और वह सिर नीचा किए कमरे से चला गया, उस हृदय-विदारक दृश्य को देख न सका। पुष्पा के बहुत से एहसान उसके सिर पर थे। काश ! वह उसके कोई काम आ सकता। काश ! वह उसका बेटा हो सकता ..... !

आज पुष्पा बहुत बेचैन थी। रात आधी गुज़र चुकी थी। अंधेरी कोठरी में सोयी हुई वह अन्धकार चीरकर इधर-उधर देख रही थी। उस अन्धकार में भी वह खेलता हुआ एक बच्चा देख रही थी जिसके गोरे-गोरे गाल थे, हँसती आँखें, नुकीली अंगुलियाँ और पतले गुलाबी ओठ। वह बच्चे की किलकारी साफ़ सुन रही थी। पुष्पा उठी और उसकी तरफ़ लपकी, लेकिन वह हँसता हुआ पीछे हटता गया। वह उसका पीछा करती रही और वह हटता रहा कि एकाएक उसने ज़ोर से बच्चे को दबोच लिया। अंधेरी कोठरी में एक चीख़ निकली, 'भाभी, यह तुम क्या कर रही हो ?' और दूसरे क्षण अन्धकार ने उस चीख़ को निगल लिया।

वह दीवानी हो चुकी थी, उसी दीवानगी में वह बच्चे

का पीछा करती दिलीप के कमरे में चली गई थी।

दिलीप ने सोचा, तो भाभी सचमुच अपना होश खो बैठीं! क्या यह घर कुछ दिनों बाद उजड़ जाएगा, निर्मल की आशाएँ दम तोड़ देंगी? क्या देखते ही देखते इन दोनों की दुनिया में आग लग जाएगी और बाक़ी रहेगा सिर्फ राख का ढेर? क्यों न वह अपने फ़र्ज़ को ललकार कर जगा दे। उसकी एक गलती दूसरे के दिमाग़ को सही कर सकती है। उसके पाँव की एक मामूली सी लड़खड़ाहट दूसरे की डगमगाती ज़िन्दगी का सहारा बन सकती है। तो क्यों न वह ····· और सचमुच वह·····।

दिलीप डा० भार्गव का असिस्टेंट था और निर्मल का दोस्त भी। निर्मल के ही घर पर रहता और भाभी के प्रेम की छाया में अपनी ज़िन्दगी के दिन काटता था। वह एक पहेली था। कोई न जानता था कि वह कहाँ का रहने वाला है और कौन है। लेकिन इतना ज़रूर था कि दिलीप एक होनहार डाक्टर, जान पर खेल जाने वाला दोस्त और हँसमुख देवर था। पुष्पा अपने देवर को बहुत चाहती और इसलिए दिलीप उसपर जान निछावर करता था। यह कह देना ज़रूरी है कि दिलीप सिर्फ देवर था और बस, पुष्पा भाभी थी और कुछ नहीं।

जब से पुष्पा के अन्दर ममता ने सिर उठाया था और निर्मल का दिल बच्चे के लिये कचोटने लगा था, तभी से दिलीप बहुत चिन्तित रहने लगा था। दिलीप चाहता था कि वह उनकी खुशी के लिए अपनी जान दे दे, लेकिन जान देने से किसी की गोद तो भरती नहीं!

आखिर वह भगवान को साक्षी रखकर पाप कर बैठा, वह पाप जो उजड़ता घर बसा सकता था, जाती खुशी लौटा सकता था। वह समाज की निगाहों में पापी था, लेकिन हर चीज़ समाज की तराजू पर ही तो नहीं तौली जाती। समाज से अलग भी एक दुनिया है जहाँ आत्मा की पवित्र आग में पाप गल कर पुण्य बन जाता है, जहाँ बदी का नाम भटकी हुई नेकी होता है। दिलीप बहुत दिनों से अन्तर्द्वन्द्व में पड़ा था और आखिर उसने क़दम उठा ही दिया। वह क़दम उठाने का निश्चय आसानी से न कर सका था। उसने बहुत बार रात भर जागकर आँखें लाल कर ली थीं, सैकड़ों प्यालियों की चाय ठंदी हो चुकी थीं सोचने में और अपनी छोटी सी कोठरी ही में सैकड़ों मीलों की यात्रा तै कर दी थी उसने। न मालूम कितनी बार उसकी अंगुलियाँ बालों में उलझी थीं और होठ भींच गए थे, तब उस दिन वह ·····।

लोक-रीति उसे गुनहगार और एहसानफ़रामोश साबित कर सकती थी, लेकिन भगवान की निगाह में वह बिल्कुल बेगुनाह था।

निर्मल अब बहुत कमज़ोर हो गया था। आशा जब मुँह मोड़ लेती है, तो निराशा अपना सिर उठा कर ज़िन्दगी को मौत में बदल देती है। निर्मल के अरमानों पर पाला पड़ गया था और उसकी तमन्नाएँ मज़ार के उस एकाकी दीप की तरह थीं जिसे दिसम्बर की सर्द हवा ठिठुरने पर मजबूर कर देती है। वह ज़िन्दगी से दूर और मौत के क़रीब होता गया। सिसकती आहों और उभरती-डूबती साँसों के कमज़ोर, कच्चे धागे पर उसका जीवन पाँच वर्षों से डोलता आया था।

अब डा० भार्गव के शब्दों ने उस धागे को बिल्कुल ही कमज़ोर बना दिया, जो किसी समय भी टूट सकता था। उसकी आँखें हमेशा भींगी रहतीं और दिल भरा रहता। इसीलिये उसने अपना घर ऐसी जगह बना लिया था, जहाँ आस-पास कहीं बच्चा न हो, लेकिन उस दिन नन्ही चिड़िया ने उसकी दबी हुई उम्मीदों को उकसा दिया।

पुष्पा अब जीवन में कुछ रस महसूस करने लगी। वह जीना चाहती थी। खूब ज़ोर से हँसना चाहती थी लेकिन न मालूम क्यों उसकी आँखें भर आतीं। वह निर्मल का चेहरा देखती, तो एक सर्द आह भरती और पलंग पर बैठ जाती। वह हमेशा सोचती कि क्या उसने गुनाह किया है? क्या उसने पति से विश्वासघात किया है? वह अपने पेट में क्या पाल रही है? लेकिन आत्मा पुकार उठती—नहीं! नहीं! पर न मालूम क्यों उसकी आत्मा मौन हो जाती जब पति का चेहरा सामने होता। उसके दिल में कोई खोट तो न थी। निर्मल के सिवा किसी को अपने दिल में जगह देने की मूर्खता तो उसने कभी नहीं की। पूजा करते वक्त वह कई बार अपने पति को भगवान शंकर की सूरत में बदलते देख चुकी थी। तन-मन से वह निर्मल की थी तब फिर यह उलझन कैसी? यह घबराहट क्यों?

पुष्पा आइने के सामने खोई हुई बैठी शृंगार कर रही थी। वह आनेवाले सुनहरे दिन के इन्तज़ार में खुद इन्तज़ार बन गई थी। उसकी माँग का सिंदूर और लाल हो गया था, चेहरे का सलोनापन बढ़ गया था, और आँखें मदमाती हो गयी थीं। जब कभी वह दोनों आँखें बन्द करती, तो आइने की पुष्पा के होठों पर मुस्कुराहट नाच जाती।

ठंढी चाय—

एकाएक उसकी निगाह सामने रखे क्यूटीकोरा टेलकम पाउडर के डिब्बे पर जाकर जम गई। उस डिब्बे पर तन्दुरुस्त बच्चे की तस्वीर आहिस्ता आहिस्ता उभरी, और बच्चा बन गई और वह पुष्पा की गोद में जाकर खेलने लगा। दूसरे क्षण पुष्पा उस डिब्बे को चूम रही थी। थोड़ी देर बाद लिपस्टिक से बच्चे के होठों को रँगने लगी। एकाएक उसने आइने में देखा, निर्मल उसे देख रहा था। उसकी आँखें थकी-थकी-सी थीं और भौंहें दिल के दर्द से सिकुड़ गई थीं। कुछ मिनटों बाद वह चुपके से लौट गया।

रात का वक्त—मूसलाधार बारिश—ज़ोर की आँधी—कमरे में अकेली पुष्पा सोने की कोशिश कर रही थी। बिजली की कड़क—हवा की सायँ सायँ—मालूम होता था जैसे भूत और जिन खिड़कियों से अन्दर आने की कोशिश कर रहे हों। पुष्पा बाहर की आँधी से नहीं बल्कि उस तूफ़ान से डर रही थी जो कुछ घंटे पहले उसके दिल की गहराई में खड़ा हुआ था। बारिश के छींटों से नहीं बल्कि आँसुओं की नन्हीं-नन्हीं बूँदों से उसके गाल भींग गए थे। वह पाम के उस चौड़े पत्ते को देख रही थी जो खिड़की के शीशे से टकरा रहा था। उसने सोचा, तो क्या वह भी अपना सिर पत्थर से टकरा कर फोड़ ले? लेकिन क्यों? क्योंकि वह गुनहगार है। लेकिन क्या उसने ऐसा केवल अपने ही लिए किया है? पाप और पुण्य का सवाल फिर उसके सामने आया और वह एक बार फिर होश खो बैठी।

एकबार फिर फर्ज़ ने उसको दबोचने की कोशिश की। वह दौड़ती हुई दिलीप के कमरे में गई और बहुत सी गालियाँ सुना दीं।

उसी अंधेरी, तूफ़ानी रात में उसे घर से निकल जाने का हुक्म दे दिया। दिलीप ने अपना क़ुसूर जानना चाहा और जवाब में मिला उसे पुष्पा का एक भरपूर तमाचा। वह उसी वक्त घर से निकल गया। फ़र्श पर आँसू की सिर्फ दो बूँदें वह अपनी निशानी छोड़ता गया। पुष्पा उन बूँदों को बहुत देर तक घूरती रही। क्षण भर बाद वहाँ पवित्र नदियों का संगम बन गया।

वह आज सब कुछ अपने पति को कह देगी, पूछेगी, क्या पुष्पा उनकी नज़र में भी पापिन है? वह बड़बड़ाई, 'मेरे देवता! तुमसे तो कुछ छिपा नहीं। मुझे माफ़ कर दो। लेकिन मैं माफ़ी क्यों माँगूँ? मैंने कोई ग़लती तो की नहीं, लेकिन .....' और 'लेकिन' ने उसका गला दबा दिया। वह आगे न बोल सकी, केवल क़दम उठे और उठते गए और वह अपने पति के कमरे में पहुँच गई। पति को देखते ही उसकी आँखें खुली की खुली रह गईं और जी धक से रह गया। निर्मल की आखें पथराई हुई थीं और दोनों हाथ लटक रहे थे। उसने धड़कते दिल और काँपते हाथ से नज़दीक के टेबुल पर रखे काग़ज़ के टुकड़े को उठाकर पढ़ा—

मेरी पुष्पा,

मैं ज़हर खाकर मर रहा हूँ क्योंकि मैंने तुम्हें माँ बनने में मदद नहीं की जो स्त्री की न मिटनेवाली अमर चाह होती है। मुझे माफ़ कर दो। दूसरी शादी तुम ज़रूर कर लेना, यह मेरी आत्मा की पुकार है। उस मुहब्बत की क़सम दिलाता हूँ जिसको तुम मेरे लिए दिल में बसाए बैठी हो। अच्छा, अब विदा। —निर्मल

ठंढी चाय—

पुष्पा की आँखें भर आईं। दाँतों तले होठ आ गए। बहुत देर तक मूर्तिवत् खड़ी रही।

पुष्पा की गोद भरे एक वर्ष हो गया। अब वह एक तन्दुरुस्त, खूबसूरत बेटे की माँ थी। नाम रखा गया जगदीश। गोद तो भर गई, पर माँग सूनी हो गई। जगदीश अपनी माँ के सफ़ेद आँचल के तले पल कर एक साल का हुआ। बेवा माँ ने अपनी सारी मुहब्बत उसी में घोल दी। उसके सुन्दर चेहरे को देख कर अपना वैधव्य भूल गई थी पुष्पा।

लेकिन पुष्पा की सौतेली माँ अपने असली रूप में आई। सौतेली माँ में जो गुण होने चाहिएँ, वे सब उसमें थे। उसको माँ कहना माँ के पवित्र नाम पर कलंक का टीका लगाना था। लेकिन समाज के रिवाज़ को भी तो निभाना था। समाज से बच कर कोई कहाँ जा सकता था और खासकर एक खूबसूरत, जवान, बेवा औरत! उसकी इज्ज़त और सतीत्व का ठेकेदार तो यही समाज होता है। लोगों का कहना है कि समाज का अटल क़ानून न हो, तो स्त्री के सतीत्व का कोई मूल्य ही न रह जाय। लेकिन क्या यह सच है? यदि हाँ, तो फिर कोठे पर रात की रानी बन कर बैठनेवाली क्या औरतें नहीं होतीं? अगर होती हैं, तो फिर उन्हें भगवान ने सिर्फ़ ग्राहकों की गोद सजाने के लिए बनाया होगा। लेकिन हक़ीक़त सब जानते हैं और हक़ीक़त पर पर्दा डाल कर अपने को भुलाए रखने के तरीक़े भी सब जानते हैं। कोई अपनी आत्मा को धोखा नहीं दे सकता।

पुष्पा की जवानी की मौज उसकी सौतेली माँ के आदर्श से

टकराई और वह घबड़ा गई। पुष्पा की कलाइयाँ सूनी थीं तो क्या हुआ, एक बार किसी के गले का हार बन जाएँ, तो दिल की दुनिया में उथल-पुथल मचा दें। आँखों में काजल न था, लेकिन शबाब तो अब भी अंगड़ाइयाँ ले रहा था उनमें। आँचल में बिजली बाँध रखने वाली औरत को बेवा रहने का क्या हक़ था? होठों पर शराब, जिस्म से बेवा। समाज एक बार काँप गया और पुष्पा को एक बूढ़े दौलतमन्द के पल्ले बाँध दिया। जगदीश अब दो वर्ष का हो चुका था और पुष्पा की खुशी भी अब दो वर्ष जवान हो चुकी थी।

पुष्पा की शादी हुए दो दिन गुजरे। एक सजे सजाये कमरे में पलंग पर बैठे लाला झाऊचन्द्र पुष्पा से बातें कर रहे थे और उस कमरे के फ़र्श पर जगदीश सेल्यूलाइड की गुड़िया से खेल रहा था। लालाजी हुस्न की बग़ल में लंगूर बने बैठे थे और उनकी ललचाई नज़रें पुष्पा की जवानी को घूर रही थीं। मधुमिलन का पहला सीन ड्राप भी न हुआ था कि नौकर संदेशा लाया कि छोटे सरकार आ गए। लालाजी खुशी से नाच उठे। पुष्पा घूँघट में गुड़िया सी लिपटी बैठी थी। छोटे सरकार अन्दर आए और माँ के चरणों में झुक कर प्रणाम किया और लालाजी बोल उठे, 'भगवान ने जगदीश और बिमल दोनों भाइयों की अच्छी जोड़ी बनायी है।' और लालाजी बाहर चले गए। पुष्पा के मुँह से निकल पड़ा, 'तुम दिलीप!' और वह बेहोश हो गई।

★

थूक और खून

सेनिटोरियम—ज़िन्दगी से मौत की तरफ़ जानेवाले मुसाफ़िरों का एक पड़ाव—आशा और निराशा के बीच एक कमज़ोर कड़ी, जो एक मामूली झटके से टूट जाए। यहाँ गीत नहीं होते जो समस्त वातावरण को रंगीन रागिनियों से भर दें—खों, खों का कटु स्वर, जो हृदय के स्पन्दनों को और भी तीव्र कर देता है। दर्द भरी आहें अरमानों और आशाओं पर ओस डाल देती हैं।

"तो क्या मैं मनुष्य हूँ? नहीं, इस प्रकार कीड़ों के समान रेंग-रेंग कर मरने वाला मनुष्य नहीं हो सकता—" पुष्पा ने एक लम्बी साँस ली, ऐसा मालूम होता था कि वह संसार का सारा आनन्द अपने में समेट कर रख लेना चाहती है, किन्तु अब किसको उससे प्यार था। वह खिड़की पर बैठी थी और दृष्टि दूर पीपल के पुराने वृक्ष के नीचे एक

बच्चे पर थी, जो मिट्टी का घरौंदा बना रहा था। वह देख रही थी कि घरौंदा बनाते-बनाते अनायास उस बालक की होठों पर हास्य दौड़ जाता था, किन्तु दूसरे ही क्षण वह फिर घरौंदा बिगाड़ देता और तब उसके गोरे गोरे गालों पर दुख और क्रोध की मिलीजुली लाली नाच जाती। वह फिर घरौंदा बनाता और बिगाड़ता। पुष्पा का जीवन भी तो उसी घरौंदे जैसा था, कभी डाक्टर की रिपोर्ट होती वह एक मास में अच्छी हो जाएगी और दूसरे दिन थूक के साथ अधिक ख़ून आता और उसका चेहरा मुरझा जाता। जीवन और मृत्यु की यह आँख-मिचौनी भी अजीब थी। उसका हृदय दर्द से भरा था, किन्तु वह मीठा था। दुख की छाया थी, किन्तु श्वेत। टपटप दो बूँद आँसू उसकी आँखों से गिरे और नीचे पाम के चौड़े पत्तों पर थरथराने लगे। पुष्पा का जीवन भी तो आशा पर थराथरा रहा था। एकाएक वह हँस दी, ऐसा लगता था कि वह उन मनुष्यों पर हँस रही है जो जीवित रहना चाहते हैं, मूर्ख मानव—

"मुझे भूलोगे तो नहीं डाक्टर, मेरे अच्छे डाक्टर ·· ·····।" पुष्पा ने घूम कर देखा नर्स और डाक्टर उस ओर से जा रहे थे। तब उसे अपने निर्मल की याद आ गई और वह फफक-फफक कर रोने लगी। उसकी केश-राशि बिखर गई। ऐसा प्रतीत होता था कि उसके जीवन की कालिमा सिमट कर उन्हीं केशों में चली आई है। यही शब्द कभी पुष्पा ने अपने निर्मल से भी कहा था और तब निर्मल ने पुष्पा को एक हल्की चपत लगाते हुए उत्तर दिया था—"क्या कोई अपना ही जीवन भूल सकता है? क्या तुम भुलाई जाने के लिए ही

मेरे जीवन में आई हो ?" वह फिर निर्मल को देख सकेगी ? अपने अरमानों की अँधेरी दुनिया में फिर से दीप जला सकेगी ? कौन बताता उसे ?

वह सोच रही थी, पर कुछ समझ नहीं रही थी। वह सुहानी स्मृतियों का जाल बुन रही थी और उन जालों में स्वयं उलझ-उलझ जाती थी। हवा का एक नर्म झोंका आया और मुरझाए चेहरे पर उसके बाल फैला गया। कौन प्यार से हटाए उन लटों को, उन शोख़ बालों की शोख़ी की आज कौन प्रशंसा करे! उसकी दृष्टि अपनी सफेद ब्लाउज़ पर गई और एक बार फिर आँखों में आँसू छलछला उठे। ब्लाउज़ पर रेशम से बनाई गई गुलाब की तीन पत्तियाँ—वह पत्तियाँ जैसे उसका मुँह चिढ़ा रही थीं। फिर वही खों-खों। उसने अपना कलेजा हाथों से थाम लिया। हाथ ब्लाउज़ पर बनी पत्तियों पर गया और उसने दूसरे क्षण अपना हाथ खींच लिया। पुष्पा ने अनुभव किया कि वे पत्तियाँ आग के तीन अंगारे हैं, गर्म लोहे की लाल सलाख़ें हैं। यही ब्लाउज़ उस दिन बना रही थी। फ्रेम में लगे कपड़े में सुई छुप रही थी और उभर रही थी, उभर रही थी और छुप रही थी और पीछे डी-एम-सी की डोरी गुलाब की पत्तियाँ बनती जा रही थी—निर्मल चुपके से पीछे आकर खड़ा हो गया था। चोरी पकड़े जाने पर उसने कहा था—"पुष्पा, ये रेशम के डोरे गुलाबी हैं या तुम्हारी होठों की परछाँई पड़ रही है इन पर।" और दोनों हँस पड़े थे। सारा कमरा गूँज उठा था। कौन जानता था कि पुष्पा को एक दिन ऐसे कमरे में भी आना पड़ेगा जहाँ मृत्यु भी डरती हुई हँसती है।

निर्मल क्या गया, उसकी आशाएँ और अरमान भी लेता गया। वह क्या गया खुशी का सब सामान लेता गया। वह खड़ी हो गई लेकिन दिल बैठ गया। वह कमरे में टहलने लगी। उसकी दृष्टि दीवान पर टँगे टेम्परेचर-चार्ट पर गई। वह देखती रही और स्वयं छोटे बड़े तापमान की रेखाओं में परिणत हो गई। वह चाहती थी कि कमरे को जला दे, डाक्टर के उस काले स्टेथोसकोप को जला दे जिससे वह पता चला लेता है कि उसका फेफड़ा और ख़राब होता जा रहा है। उस आग को जला दे जिसकी ज्वाला से हृदय जलता रहता है। अब वह जलने लगी, पसीना से तर हो गई और उसके मुँह से एकाएक निकल गया—"नर्स! बर्फ ले आओ।" किन्तु दूसरे क्षण दिसम्बर की ठंडी हवा ने उसे चौंका दिया और वह शाल ओढ़कर सो गई। हाय री बेबसी! आज तू भी बेबस है। किन्तु ऐसा होता भी है तो क्या ऐसा ही होना चाहिए? और वह 'चाहिए' की उलझन में फँसकर शाल को चेहरे तक ले आई और अन्दर ही अन्दर रोती रही और सोती रही, सोती रही और रोती रही। परिणाम यह हुआ कि वह न जी भर कर रो सकी, न सो सकी। उसे जीवित रहना है अपने प्रियतम के अन्तिम दर्शन के हेतु। उसे कुछ दिनों तक मृत्यु से लड़ना है, उसका निर्मल जो आनेवाला था।

वह छत की कड़ियाँ गिनने लगी। आज छत की दो कड़ियाँ ग़ायब थीं। आखिर ऐसा क्यों? पुष्पा घबड़ाहट पर शर्मिंदा भी। दीवानी, आँखें साफ़ तो कर, आँसुओं से धुँधली हो चुकी हैं। क्या आँखें साफ़ होने के पश्चात् हृदय का धुँधलापन भी दूर हो सकता

है ? वह आज बहुत बेचैन थी। उसकी आशाओं का दीप झिलमिला रहा था। उसकी आँखें आज ज्यादा धँस गई थीं। वह सिर को हाथ से पकड़े रो रही थी उसकी चिकनी बाहों पर आँसू गिर रहे थे। उन आँसुओं में थोड़ी देर के लिए निर्मल का मुखड़ा चमक उठा। आँसुओं की वह बूँदें बाहों से ढुलक कर दवा से भरी गिलास में गिर रही थीं जिसे कुछ क्षण पहले नर्स रख गई थी। वह फिर आँसुओं को पिएगी। फिर आँसू गिरेंगे और इसी तरह एक हिचकी के साथ उसका जीवन समाप्त हो जाएगा। उसके जीवन में आशा की एक भी किरण कहाँ ? "लीजिए आपका एअर-मेल पत्र" और नर्स बाहर चली गई। पत्र उठाते समय उसके हृदय काँप रहे थे, हृदय काँप रहा था, हाथों में लिफ़ाफ़ काँप रहा था और संभवतः लिफ़ाफ़ा में बन्द काग़ज़ का टुकड़ा भी काँप रहा हो।

कोहिमा

मेरी बहुत अच्छी पुष्पा ! ३ दिसम्बर

मैं बहुत दिनों से तुम्हें कोई पत्र न लिख सका। ओह ! तुम्हारे माथे पर बल पड़ गए ! पहले बात तो सुन लो, अपराधी की सफाई भी सुन लो। फिर जो भी दंड दोगी मैं सहर्ष स्वीकार कर लूँगा। हाँ, तो मैं एक अर्सा से शत्रुओं के अधिकार में था। कई बार तो मुझे गोली से उड़ा देने का प्रयास किया गया, किन्तु पुष्पा की धरोहर को कौन हाथ लगा सकता था ! मैं बच गया और आज प्रातः काल एक हज़ार छः सौ भारतीय बन्दियों को छोड़ दिया गया और उसमें एक मैं भी था। मैं चौदह तारीख़ के रात की आठ बजे वाली गाड़ी से पहुँच

रहा हूँ। मैं आज ही रवाना हो जाता, लेकिन कमाण्डर की दशा शोचनीय है, संभवतः उनकी पुष्पा ने आत्महत्या कर ली है। एम्बुलेन्स वान लगी है। मुझे तुरंत जाना है। मिलने पर ख़ूब-ख़ूब बातें होंगीं। कुछ बहकी-बहकी भी।

तुम्हारी याद में तुम्हारा—

निर्मल

एक काग़ज़ का मामूली टुकड़ा भी किसी के जीवन में ऐसी क्रान्ति ला सकता है! सैनिटोरियम के बड़े-बड़े डाक्टरों का मष्तिष्क कुछ न कर सका और काग़ज़ का यह टुकड़ा·····। वह नाच उठी। उस ओर से जाती हुई नर्स को उसने बुलाया। अब वह उससे कैसे कहे कि 'वह' आने वाले हैं! नर्स आई, कुछ देर चुपचाप खड़ी रही; फिर हँस कर चली गई। वह प्रसन्नता से कहीं पागल न हो जाए। दीवानी पुष्पा! कमरे की सभी वस्तुएँ चमकने लगीं, यहाँ तक कि छत की खुरदुरी कड़ियाँ भी चमकने लगीं, बिछावन पर रखा हॉट-वाटर बैग भी चमकने लगा। आज उसकी जवानी भी कितनी जवान लगती थी, उसका सौन्दर्य भी सुन्दर हो गया था। आज पुष्पा सचमुच फूलों की रानी थी, फूलों के गहनों से सजी। वह अपने आप हँस रही थी और साड़ी के आँचल से अपने गालों को सहला रही थी। चिकने गोरे गाल और मुलायम साड़ी का आँचल! उसका अंग-अंग सिहर उठता। काश! उसका निर्मल अभी आ जाता, इसी समय—खैर, दो घंटे बाद ही सही। वह अपने आप से आज प्रेम कर रही थी। उसका तन मन सब तो निर्मल का है। इस

प्रकार भी तो वह निर्मल को ही प्रेम करती है। यह अपनी ही आँखों में खो जाना चाहती थी और इसी प्रकार वह खोकर निर्मल की बड़ी-बड़ी आँखों में समा सकेगी, वह उसे अपनी बोझिल पलकों में छुपा लेगा।

अब वह कमरे में ठहरना नहीं चाहती थी। वह चाहती थी कि कोई उसकी खुशी देखे और अपनी खुशी उसमें घोल दे। कोई उसकी आँखों की प्रशंसा करे, उन आँखों की जिसे उसने निर्मल के पथ में बिछा रखी थीं। और दूसरे क्षण वह सैनिटोरियम के इन्चार्ज डाक्टर भार्गव की आफ़िस में बैठी थी। बहुत बहुत बातें कर रही थी। कुछ शर्माती-सी, कहीं भेद खुल न जाए; कुछ लजाती-सी, कहीं उसकी चोरी पकड़ न ली जाए। वह कुर्सी पर भी ठीक से न बैठ सकी। इधर उधर घूम रही थी। डाक्टर मना कर रहा था कि ज्यादा हरकत शायद ख़तरनाक साबित हो, लेकिन उसे आज अपनी सुधि थोड़े ही थी। उसे तो केवल इतना होश था, वह समझ रही थी कि वह मदहोश है। उसकी दृष्टि टेबुल-कैलेन्डर पर गई। वह झुँझला उठी और बोली—"डाक्टर साहब ! आज चौदह तारीख़ है ?" और हँसते हुए डाक्टर ने कहा—"हाँ, पुष्पा देवी ! आज चौदह ही तारीख़ है" डाक्टर हँस रहा था और पुष्पा मन ही मन बिगड़ रही थी। तीखे स्वर में बोली—"फिर बारह तारीख़ क्यों लगा है ? आपलोग कैलेन्डर रखते हैं, लेकिन दिनों के साथ उसे बदलते नहीं।" और तभी पुष्पा ने हँस दिया। आख़िर यह क्या बिगड़ना ? अभी हँसी, अभी बिगड़ी; अभी बिगड़ी, अभी हँसी।

और वह फिर अपने कमरे में चली आई। कुर्सी पर बैठ गई।

आईना लेकर ध्यान से देखने लगी। उसका मनमोर नाच रहा था, आशाएँ नाच रही थीं और वह आइना की पुष्पा से बातें कर रही थी। कितनी ही उल्टी सीधी बातें कर गई, जिसे वह स्वयं न समझ सकी—"अब वे दो घंटे में आएँगे। हाँ दो घंटे में।" हवा से उसकी साड़ी लहरा उठी और पल भर के लिए कमरे में ही इन्द्र-धनुष खिंच गया। वह अपने आप बोली—"ओ हवा के झोंको! कितने प्यारे हो तुम।" शायद यह झोंका निर्मल का प्यार लाया ..... "पुष्पा देवी! यह तार आया है।" तार-प्यून ने पुष्पा के कमरे में आकर कहा। उसने काँपते हाथों से तार लेकर पढ़ा—

निर्मल घर जाते हुए जहाज़ की दुर्घटना मे मर गया। उसका वायुयान अनजाने पहाड़ से टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो गया।

कुमार

पुष्पा की आँखों से न आँसू बहे और न होंठों से आहें निकलीं। एक बार वह खाँसी और ज़ोर की हिचकी आई। फेफड़े के कितने ही टुकड़े ख़ून में लथपथ मुँह से निकल कर फ़र्श पर आ रहे और वह .....।

शैतान जाग उठा

हज़ारों वर्षों की मनुष्यता ने आज आख़िरी साँस ली और आख़िरी हिचकी के साथ सदा के लिए ठंढी पड़ गई। मौत के रोंगटे खड़े हो गए और शैतान ने शर्म से अपनी आँखें बन्द कर लीं। नव-यौवना वधुओं के हाथ अपने ही मासूम बेटों के ख़ून से रँग गए, वही हाथ जो कभी मेंहदी से रँगे जाते थे। मुसलमान हिन्दू की और हिन्दू मुसलमान की ज़िन्दगी और इज्ज़त का ख़रीदार बन गया। मनुष्य-वेषधारी राक्षसों ने जवान लड़कियों को नंगी नाचने को बाध्य किया। शोहदों और गुण्डों ने क़हक़हे लगाए, जिससे पहाड़ों की छातियाँ भी दहल जातीं और पत्थरों से भी आँसू बहने लगते।

इस बड़े नगर के इतने बड़े मुहल्ले की यह दशा? जल कर क्षार हो गया। मकानों की दीवारें केवल आग उगल रही हैं और

सब मिट्टी में मिल गए। जहाँ से कभी ढोलक की आवाज़ निकलती थी, आज वहाँ अधमरों की आह-कराह निकल रही है। उनके सीनों में छुरे भोंक दिए गए हैं। जहाँ से कभी नन्हें बच्चों की हँसी और किलकारियाँ आती थीं, आज उनकी चीख़ें आती हैं।

आग का बहुत बड़ा अलाव। खल-नायक ने कड़क कर कहा—'रणवीर, मुँह क्या देख रहे हो; ले लो इनकी गोद से इन बरसाती कीड़ों को और देखने दो वह खेल इन्हें भी जिसे देखने शैतान भी धरती पर उतर आए।' दो हृष्ट-पुष्ट नवयुवक हिन्दुओं ने आगे बढ़कर चीख़ती-चिल्लाती माताओं की गोद से बच्चों को छीन लिया। दो-तीन ने उन दो अबलाओं को बलपूर्वक पकड़ कर एक बड़े लोहे के बीम के नीचे दबा दिया। जब वे ज़ोर से चिल्लातीं तो ऊपर से कोड़े पड़ते। वे नवयुवक उस बच्चे को लेकर एक अधजली अट्टालिका पर चले गए, वह अट्टालिका क्या थी एक मन्दिर था और नीचे चार-पाँच आदमियों ने बर्छे और तलवारों को धरती में यों गाड़ दिया जिससे सबकी नोकें ऊपर हों। खल-नायक कड़क कर बोला—'रणवीर, फेंको बच्चों को; देखो निशाना चूकने न पाए।' और सब ज़ोर से चिल्लाए 'जय बजरंग बली' 'हर हर महादेव।'

वह स्त्रियाँ बीम के नीचे दबी चिल्ला रही थीं—'छोड़ दो मेरे बेटे को! खुदा के वास्ते बख्श दो मेरे मासूम को!! रसूले-पाक की दुहाई देती हूँ, काफ़िरो! कमलीवाले के नाम पर मत मारो मेरे लड़के को!!' लेकिन कौन सुनने वाला था उन बिचारियों की। मन्दिर से बच्चे नीचे गिरा दिए गए और वे सीधे बर्छे पर आ गिरे। उफ़!

आकाश क्यों न गिर पड़ा, धरती क्यों न फट गई और अपनी धूरी पर घूमनेवाले नक्षत्रों की ज्योति क्यों न मन्द पड़ गई ! उन नवयुवकों ने बच्चों से छिदे हुए उन बच्चों को उठा लिया और अलाव के समीप ले चले। खल-नायक ने कहा—'मनाओ होली, खेलो सब मिलकर फाग। अबीर और गुलाल न रहे तो क्या हुआ, ताजे रक्त की लाली तो है, लचकती कमरवालियों की भरी जवानियाँ तो हैं न ! मनाओ होलिका-दहन।' बीम के नीचे से उन स्त्रियों को हटाया गया और उन्हें अर्द्ध नग्न अवस्था में सैकड़ों लोगों के बीच नाचने पर बाध्य किया गया। बेटे जल रहे थे और माताएँ नाच रही थीं।

यह भयानक खेल खेला जा रहा था। मृत्यु का राग आलापा जा रहा था। पिशाच के नगाड़े बज रहे थे कि एकाएक भीड़ में शोर हुआ—'पकड़ो ! पकड़ो !! एक मुसलमान लड़की है, युवती है, पकड़ो !!!' सब ने एक मुसलमान नवयुवती को दौड़कर समीप आते हुए देखा। ज़ोर ज़ोर से साँस चल रही थी। दुपट्टा शरीर से सरक गया था और बाल खुले थे। वह पकड़ ली गई। आ गई यमराज के पंजे में। पड़ गई शैतानों के चंगुल में और खल-नायक उसे एक अँधेरी कोठरी में ले चला। यह डरावनी अँधेरी रात। कोठरी का भयानक अंधकार और पिशाच-से भयंकर खल-नायक की काली वासना। लड़की सहम गई या यों कहिए बेहोश हो गई। खल-नायक की गर्म-गर्म साँस लड़की के ठंडे कपोलों से टकरा रही थी। कुछ देर बाद वह लड़की के साथ बाहर आया और अट्टहास कर बोला—'भाइयो ! यह लड़की मज़ेदार तो है, लेकिन जुबान कैंची की रखती है।' और

सैकड़ों लोगों ने उसे घेर लिया। उसके दुपट्टे और शलवार पर पड़ी शिकनों को वे घूर-घूर कर देख रहे थे। आँखें ऐसी मालूम होती थीं जैसे कली को मसल कर छोड़ दिया गया हो और दोनों कपोल आँसुओं से तर थे। वह लड़खड़ा कर गिर पड़ी। वह रो रही थी और कहे जा रही थी—'शोहदो! क्या घूर-घूर कर देख रहे हो। क्या तुम्हारी बहू बेटियों की जवानी तुम्हें मयस्सर नहीं! क्या तुम्हारी बहनों और बेटियों का गदराया शबाब नहीं है जिसे तुम ललचाई नजरों से देख सको!' खल-नायक की आँखें अंगार उगलने लगीं, भौंहें तन गईं और वह ज़ोर से कड़क उठा—'तेरी यह हिम्मत, कि तू मेरी माँ-बहनों पर आक्षेप करे! देख क्या दुर्दशा होती है।' उसने इशारे से लोगों को कुछ बताया। आठ-दस नवयुवक आगे बढ़े और लड़की को पृथ्वी पर पटक कर उसकी कोमल छाती पर सवार हो गए और तब आलाव की आग में एक तेज छुरा चमका और दूसरे क्षण लड़की की आधी जीभ कट चुकी थी। सब लोग हँस रहे थे और गा भी रहे थे। लड़की तड़प रही थी—खून में लथपथ।

लड़की को फिर उसी कोठरी में ले गए। वह नंगी कर दी गई और उसकी माँग जमे हुए रक्त के सिन्दूर से भर दी गई। कमीज उतार कर उसे एक रंगीन ब्लाउज पहना दिया गया, किन्तु फिर भी उसका यौवन निखर न पाया। अब उसे एक पतली अच्छी साड़ी भी पहना दी गई। अलाव की रोशनी में लड़की चमक उठी। खल-नायक की आँखें देख रही थीं लड़की को, उसकी ब्लाउज को और·····।

ठंढी चाय—

वह लड़की, वह गूँगी लड़की; वह उजड़े सतीत्व की लाश भागी मुसलमानों के मुहल्ले की ओर। संभवतः इसलिए कि सगे-सम्बन्धी अब भी उसकी सहायता करें। वह भागी जा रही थी मृत्यु से दूर और जीवन के समीप। वह गिरती, उठती और फिर गिरती। रात और अँधेरी हो गई थी। मुसलमानों का एक मुहल्ला—उन इस्लाम पर कुर्बान होने वालों का मुहल्ला जिन पर संसार को गर्व था, जिनकी म्यान से नारियों की सतीत्व-रक्षा के लिए सदा तलवारें निकलती थीं। किन्तु आज कहाँ गई वह आन और उस आन की शान! कुछ मुसलमानों के बीच एक अर्द्ध-नग्न हिन्दू स्त्री नृत्य कर रही थी और गाना भी गाती जा रही थी। मन रो रहा था और वह गा रही थी। बहुत सी हिन्दू युवतियाँ तड़प रही थीं समीप के ही नाले में। खून में लथपथ स्त्रियाँ घोड़े के पानी पीने वाले हौज़ में तड़प रही थीं। कल्ह से घोड़े खून पिएँगे। पानी अब कहाँ! पानी के भाव तो रक्त मिल रहा था।

वह गूँगी लड़की पहुँची उस मुहल्ले में। कुछ मुसलमानों ने उस सुन्दरी को पकड़ लिया। मुल्ला बोला—'हिन्दू लड़की है। खुदा कितना मेहरबान है। दुनिया में ही हूर भेज दी।' और अहमद ख़ाँ ने लपक कर उस लड़की का हाथ पकड़ लिया और ले गया सामने के मन्दिर में, जहाँ और हिन्दू स्त्री-पुरुष मरे पड़े थे। संभवतः वह मन्दिर में जा रहा था उस लड़की को यह बताने कि कहाँ है तुम्हारा भगवान और देवता। वे आएँ और तुम्हें बचाएँ। किन्तु भगवान तो अपने ही रंग में डूबा था। लड़की का सतीत्व दूसरी बार लूटा गया।

उसकी ब्लाउज़ पर दूसरी बार शिकनें डाली गईं। किन्तु क्या तब की शिकन और अब की शिकन में कोई अन्तर नहीं था?

किसी ने द्वार थपथपाया—'अरे भई, बाहर भी आओ। सुबह होने को आई और तुम हो कि सारी रात को समेटे ..... ।' अहमद ख़ाँ के समीप एक वस्तु गिरी। उसने उठा लिया। वह छुरा था। छुरा ऊपर उठा, किन्तु ऊपर ही रह गया। वह एक बार और तारा तोड़ना चाहता था कि एकाएक ज़ोर का तमाचा उसके गालों पर पड़ा। लड़की सिंहनी की तरह उठी, किन्तु दूसरे क्षण वह छुरा उस पर पड़ा। फिर भी वह मर न सकी थी क्योंकि छुरा का आधा वार उसके गले की लाकेट पर पड़ा था। अहमद ख़ाँ मन्दिर के बाहर आया और कुछ मुसलमान लड़की को घसीट कर नाले में फेंकने चले। बाहर आते ही सूर्य की पहली किरण उस आहत बालिका के चेहरे पर पड़ी। अहमद ख़ाँ ने लड़की को देखा और चीख़ कर धरती पर गिर गया, धरती पर क्या गिरा लड़की के पेट पर गिरा और हाथ उसके गले पर। वह अचेत हो गया। चेतना लौटते ही उसके गले पर पड़े हाथ में वह लाकेट था जिसमें उस लड़की की माँ का चित्र था, उसी की माँ का चित्र और वह फिर अचेत हो गया।

शैतान नंगा खड़ा दाँत निकाले ज़ोर-ज़ोर से ठहाके मार रहा था और हज़ारों वर्षों से सर ऊँचा किए रहनेवाले हिमालय की छाती भी दहल रही थी।

★

मेड इन इंगलैंड

उस दिन अपनी कोठरी में बैठा वह एक कहानी पढ़ रहा था। एकाएक उसकी नज़र उस कहानी के एक प्रश्नसूचक चिन्ह पर रुक गई। वह किसी की ज़िन्दगी और मौत का निशान था। वह निशान एक नई नवेली दुल्हन की सुहाग-बिन्दी से बहुत मिलता-जुलता था। वह उसमें खो गया। हज़ारों प्रश्न-सूचक चिन्ह उसके चारो ओर नंगे नाचने लगे और दूसरे ही क्षण नर-कंकाल में बदल गये। वह डर गया। उसने आगे पढ़ा, लेकिन यह क्या? जैसे चुम्बक उसे पीछे की ओर खींच रहा हो। उसका दम घुटने लगा और वह छत पर चला गया।

आस्मान पर घटाएँ तो न थीं, सिर्फ बादल मँडरा रहे थे। चाँद की चाँदी-सी किरणें बादलों की ओट से झाँक रही थीं। वह

विचारों में खोया छत पर घूम रहा था। पीपल पर चिड़ियों के परों की फड़फड़ाहट से सोचने का क्रम टूटते ही उसकी नज़र छत पर गई। तत्क्षण उसने अनुभव किया कि सारे शरीर में बिजली की धारा दौड़ गई है और वह बिल्कुल शिथिल पड़ गया है। पड़ोस की छत पर एक काफ़िर-अदा नाज़नीन घूम रही थी, पर उसमें क्या! निर्मल १५ अगस्त, १९४७ से उसे देखता चला आ रहा था, लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसे देख कर उसके शरीर में विद्युद्धारा दौड़ जाये। अशोका को तकिये का गला घोंटते निर्मल ने कई बार देखा था, फिर भी उसके दिल में दर्द न उठा और अपने सीने को मसोसा भी तो न था। वह सिर्फ चोली पहने अपनी छत पर कई बार घूम चुकी थी और निर्मल ने उसे देखा भी था, लेकिन उसके दिल में कभी यह ख़याल घर न कर पाया कि वह अशोका को कलेजे से लगा कर इतने ज़ोर से दबोच ले कि उसकी चोली के सब बटन टूट कर गिर जायँ। निर्मल कई बार उसे अपनी तरफ़ घूरते भी देख चुका था जैसे बड़ी-बड़ी प्यासी आँखों से पी लेना चाहती हो, लेकिन उसने यह कभी ज़रूरी न समझा कि उन मदभरी आँखों पर दो चुम्बनों की मुहर लगा दे। अशोका में न वह गजगामिनी की चाल थी, न चोली पहने थी, न तकिये का गला घोंट रही थी और न वह उसे पी जाना ही चाह रही थी। तो आख़िर आज ऐसा हुआ क्यों? क्यों उसके शरीर में विद्युद्धारा दौड़ गई है? चहलक़दमी में उसके पाँव ज़ोर-ज़ोर से उठने लगे। अगर सामने लम्बी सड़क होती तो शायद वह दौड़ने लगता। कुछ मिनटों बाद हिम्मत कर उसने एक बार फिर अशोका को देखा, लेकिन आश्चर्य की बात

थी कि उसे कुछ न हुआ। वह मुँडेरे पर बैठे गया और छोटी सी ईंट के एक टुकड़े से छत पर औरतों की ऐसी-वैसी तस्वीरें बनाता और बिगाड़ता रहा। वह तस्वीरें नहीं बना रहा था बल्कि सोच रहा कि पहली बार आज ऐसा क्यों हुआ और दूसरी बार क्यों न हुआ ? इस पहेली ने उसकी हस्ती को झँझोर दिया, फिर भी वह सुलझ न सकी। यह पहेली औरत के दिल की गहराई से भी ज्यादा गहरी थी। उस राज से भी ज्यादा गहरी थी कि रात को हँसते हँसते सोनेवाली महारानी का तकिया सुबह को आँसुओं से तर क्यों पाया जाता है ! उसकी आँखें झुकी थीं, लेकिन ख़यालात उठ चुके थे। फिर भी वह उस पहेली की ऊँचाई तक पहुँचने में असफल रहा। निर्मल ने एक बार फिर अशोका को देखा और फिर वही विद्युद्धारा। उसका दिमाग़ झनझना उठा। अब वह हर चार-पाँच मिनटों पर अशोका को देखता और उस पर मिनटों सोचता।

निर्मल की आँखें खुशी से चमक उठीं। उसके होठों पर मुस्कुराहट की हल्की पतली लकीर खिंच गई और बालों में उलझी पाँचों उँगलियाँ ढीली पड़ने लगीं। उसकी पहेली अब सुलझ गई। जब भी अशोका अपने निचले होठ को दाँतों से दबा कर निर्मल की ओर देखती तो उसके शरीर में बिजली दौड़ जाती। अशोका के दाँत उसे बहुत सुन्दर लगे। उन दाँतों की सुन्दरता में उस समय चार चाँद लग जाते जब वे उसके होठ पर होते। लाल होठों पर सफेद दाँतों की पंक्ति और उस पर सितम काले-घुँघराले बालों का घटाओं की तरह छा जाना। निर्मल अशोका की इस अदा पर ज़िन्दगी की सारी खुशियों और अरमानों की तपिश निछावर कर बैठा।

वक्त के साथ उन दोनों की मुहब्बत भी बढ़ी। कितने ही मनसूबे बाँधे गए। उन लोगों की बहुत सी रातें तारे गिनने में भी बीतीं। चाँदनी में पाम के चौड़े पत्ते की छाया में दो दिलों की दुनिया बसती। अशोका की पतली-पतली नर्म उँगलियाँ प्यानों के सफेद रीडों पर तीव्र गति से चल रही थीं। नाख़ून क्यूटेक्स से सुर्ख़ थे। सुर्ख़ नाख़ून और सफेद रीड, कितने भले मालूम होते थे। काश! निर्मल खुद सफेद रीड होता तो अशोका की उँगलियाँ किस नज़ाकत से उस पर दौड़तीं और उस स्पर्श के उन्माद में डूब कर वह सात स्वरों में जीवन और प्रेम का राग निकाल सारा वातावरण ही बहका देता। लेकिन वह तो अदना आदमी और बस ·····। वह एक टक अशोका के लाल होठों को देख रहा था, जिस पर कभी-कभी मोती-जैसे दाँतों की क़तार आ जाती। सफेद रीडों पर सुर्ख़ नाख़ून और सुर्ख़ होठों पर सफेद दाँतों की क़तार, वह उस सुर्ख़ और सफेद खेल में हारा हुआ एक व्यंग्यजनक खिलाड़ी था, लेकिन वह कितना खुश था अपनी हार पर जो निकट भविष्य में आनेवाली जीत का संदेशवाहक थी। उसे उस जलन पर कितना नाज़ था जो नित्यरूप में दूरदर्शी को ठंढक पहुँचाती है। वह सुनहरे स्वप्न में खोया था जिसका अर्थ स्वयं अशोका थी। एकाएक उसकी दृष्टि प्यानो के उस भाग पर गई जहाँ बड़े अक्षरों में लिखा था "*Made in England*" न जाने क्यों उसका चेहरा उतर गया और दिल बैठ गया। उसके दिल में टीस उठी, जिसका भेद माथे पर पड़े बल खोल रहे थे।

प्रातः काल का समय। निर्मल की प्रसन्नता असीम थी। वह

अपनी छत पर टहल रहा था। छत पर टहलने की उसकी आदत स्वभाव में बदल गई थी। क्यों न बदल जाए! स्वयं अशोका जो उसके निर्व्याज प्रेम में परिवर्तित हो गई थी। वह एक हाथ पीठ पर रखे टहल रहा था। सड़क पर कार से उतरती हुई अशोका को उसने देखा। दोनों की आँखें टकराईं। अशोका को एक शरारत सूझी और वह निचला होठ दाँतों तले दबा कर उतरने लगी। वह निर्मल को भी देख रही थी। उसका सिर मोटर के दरवाजे से टकराया और दाँतों ने होठ को लहूलुहान कर दिया। अशोका के मुँह से एक ठंढी आह निकली और निर्मल की आँखें भर आईं।

वह डाक्टर था और उसने महसूस किया कि इसी दिन के लिए उसने डाक्टरी की शिक्षा पाई थी। कल रात वह अशोका को देखने उसके घर गया, उसे दवा दी और खुद दर्द लेकर वापस चला आया। वह बिस्तर पर लेटा करवटें बदल रहा था। उसकी हर करवट में बेचैनी और दर्द छिपा था। वह उन मोती जैसे दाँतों पर बहुत क्रुद्ध था जिनके कारण उसकी बहार में पतझर आ गया था। ये हसीन चीज़ें कितनी ख़तरनाक होती हैं। अब उसकी इच्छाओं और अभिलाषाओं का केन्द्र केवल अशोका के होठ रह गये।

डाक्टरी की ऊँची शिक्षा के लिए वह विलायत चला गया। वह बीमार, इलाज और डाक्टर को एक ही सूत्र में बाँध देना चाहता था। वह इसके द्वारा मानवता की पुकार सुनना चाहता था, इसीलिए तो अपना जीवन-धन इस पार छोड़ कर जीवन का सबसे बड़ा कर्त्तव्य पूरा करने उस पार चला गया था। न जाने क्यों उसने यह ठान ली कि

वह *Specialist in diseases over neck* होगा। एक दिन वह अपने प्रोफेसर से मिलने *Serpentine Club* गया। उसका प्रोफेसर आँखों में मस्ती और बाहु-पाश में एक बहकी जवानी लिए कमरे में आया। निर्मल यह सब कुछ देख रहा था। वह शराब की बोतल को ग़ौर से देख रहा था जो टेबुल पर औंधी पड़ी थी, जिस पर लिखा था '*Made in England*'। औंधी पड़ी रहने पर भी उसकी अकड़ वैसी ही थी और वातावरण में दुर्गन्धि भी वैसी ही फैल रही थी। निर्मल के होठों पर व्यंग्य-भरी मुस्कराहट आई और चली गई। उसने एक मेम साहिबा को देखा जो अपने होठों की लाली से सिगरेट को लथपथ कर रही थी। बायें हाथ में रैकेट था जिसे बड़े नज़ाकत से हवा में हौले-हौले घुमा रही थी। प्रोफेसर से बिना बात किए ही वह दबे पाँव लौट गया।

शिक्षा समाप्त कर पूरे एक साल बाद वह इंगलैंड से लौटा। भारत की भूमि पर पैर रखते ही उसे दिल्ली अस्पताल का असिस्टेंट सर्जन बना दिया गया। थोड़े ही दिनों में वह सब का प्यारा बन गया। वह बहुत व्यस्त रहने लगा, लेकिन उस आलम में भी वह अशोका को न भूल सका। उसकी याद हर वक्त उसे सताया करती।

एक दिन वह ड्राइंग-रूम में सोफ़ा पर बैठा '*Discovery of India*' पढ़ रहा था। दीवार पर टँगी अँगरेज़ी घड़ी की टिक-टिक कमरे के शान्त वातावरण में बाधा पहुँचा रही थी, शायद स्टाफोर्ड क्रिप्स का भाषण दुहरा रही थी। वह नहीं चाहती थी कि डाक्टर

निर्मल नेहरू जी की किताब पढ़े और भारतीय संस्कृति पर उसे गौरव हो, क्योंकि उसका वह गौरव विदेशी नाज़नीनों के गाउन पर एक धब्बा लगा सकता था। द्वार का रंगीन पर्दा हिला और एक परेशान नवयुवक अन्दर आकर सोफ़े पर बैठ गया। निर्मल ने टेबुल पर किताब रख दी और पूछा—'मेरे योग्य कोई सेवा ?' वह नवयुवक गुमसुम निर्मल को अपलक देखता रहा जिसका नाम था रमेश। निर्मल फिर बोला—'क्या मैं आपके किसी काम आ सकता हूँ ?' रमेश की आँखें उठीं—'मैं एक तकलीफ़ देने आया हूँ। आपका यह कष्ट मेरी उजड़ती दुनिया बसा सकता है।' और उसने ज़ोर से बाहर पुकारा—'अशोका ! अन्दर आ जाओ।' अशोका आई और रमेश के नज़दीक बैठ गई। निर्मल देखता रह गया। क्या उसी की प्रियतमा उसकी आँखों के सामने है ? नहीं ! किसी की जीवन-संगिनी। रमेश बोला—'यह मेरी पत्नी हैं। एक महीना पहले एक दुर्घटना के कारण इनके दाँत होठ पर आ रहे और तब से ज़ख्म बढ़ता रहा, हमलोगों की फ़िक्र भी बढ़ती रही। बड़े-बड़े शहरों में इलाज के लिए ले गया और पानी की तरह रुपए बहाये लेकिन फ़ायदा कुछ न हुआ। दाँतों तले होठ दबा लेने की बुरी आदत इन्हें बहुत दिनों से है। अब आपही पर मेरी सारी आशायें टिकी हैं। किसी तरह आप इन्हें चंगा कर दीजिए।' निर्मल खोया हुआ था और बहुत देर तक खोया रहता यदि उसकी आँखें अशोका की आँखो से न मिलतीं। दोनों एक दूसरे को देख रहे थे। अशोका की आँखें जैसे कह रही थीं—'आदत बुरी है, लेकिन यही आदत किसी को जान से भी प्यारी थी।'

अशोका अस्पताल में भर्ती कर ली गई। दिन-रात निर्मल उसकी सेवा करता रहा। अशोका के पति और पिता की आँखें सदा आभार से झुकी रहीं। एक दिन अशोका ने कहा—'निर्मल! तुम्हारे हाथों मैं मौत चाहती हूँ।' निर्मल गुस्सा कर बोला—'दीवानी न बनो! मैं इंगलैंड से डाक्टरी पढ़ कर आया हूँ। तुम्हें अच्छा कर सका तो यह मेरी खुशक़िस्मती है और तब समझूँगा कि मेरा धन और परिश्रम काम आया है।'

ऑपरेशन थिएटर में सैकड़ों वाट की बिजलियाँ जगमगा रही थीं। चार नर्स और तीन डाक्टर मौजूद थे। निर्मल सफेद कपड़ों में था। केवल दो आँखें दिखाई देती थीं और उँगलियाँ भी तो दस्ताने में ढँकी थीं। वे सफेद कपड़े उसके दिल में उठती हुई मौज को छुपा नहीं पा रहे थे। क्योंकि आँखों के लाल डोरे से मौजों के छींटे साफ़ दिखाई देते थे। गर्म-गर्म साँसों से उसकी भावनायें निकल रही थीं। अशोका के होठ का ऑपरेशन हो रहा था और बाहर उसके पिता और पति की उम्मीद ज़िन्दगी और मौत के बारीक डोर पर झूल रही थी।

निर्मल डाक्टरों के साथ बाहर आया और बोला—'ऑपरेशन कामयाब रहा।' अपने आफ़िस में जाकर टेबुल से टकराया और धम्म से कुर्सी पर बैठ गया। जैसे मुसीबत के पहाड़ से टकराया हो और उम्मीद की गोद में आ गिरा हो। उसने अनुभव किया कि वह अशोका की क़िस्मत बनता जा रहा है। उसने पुकारा—'नर्स! अशोका के पिता जी को अन्दर भेज दो।' वह साँस रोके उनकी प्रतीक्षा करता रहा। आज वह एक बहुत बड़ा राज़ खोल देगा।

वह राज़ आज हक़ीक़त बन जायगा और उसकी हस्ती एक राज़। अशोका के पिता अन्दर आये। निर्मल ने शिष्टतापूर्वक उन्हें कुर्सी देकर पूछा—'लाला जी! मैं आपका अपना हूँ और डाक्टर भी जो किसी के जीवन और मृत्यु का उत्तरदायी होता है। मुझसे पर्दा कैसा! क्या अशोका के ऊपरवाले पाँच-छै दाँत नक़ली हैं?' अशोका के पिता की आँखें भर आईं। भरीई आवाज़ में उन्होंने—'हाँ बेटा! पिछले साल इंगलैंड में एक मोटर दुर्घटना हुई और अशोका के ऊपर के कुछ दाँत टूट गये। वह बिल्कुल बदसूरत हो गई थी, इसीलिए बहुत रुपए ख़र्च करके उसके दाँत वहीं बनवा लिए और तबसे यह राज़ ही रहा।' निर्मल यह सब सुन रहा था और सलाई की तिल्ली से टेबुल पर लकीरें खींच रहा था। दराज से नक़ली दाँत निकालते हुए बोला—क्या ये ही वे दाँत हैं?' और लाला जी ने सिर हिला कर इसे स्वीकार किया। निर्मल ने उन दाँतों को बड़े ध्यान से देखा और कहा—'जिन रसायनों से ये दाँत बनाये गये हैं वे विषैले हैं और यही कारण है कि अशोका का होंठ सड़ गया।' नर्स आकर बोली—'डाक्टर! पेशेन्ट की हालत अच्छी नहीं।' निर्मल चीख़ उठा—'नर्स! तुम जाओ। मैं उसे अपनी ज़िन्दगी देकर भी अच्छा करूँगा।'

निर्मल की आँखें नक़ली दाँतों के उस हिस्से पर जाकर ठहर गईं जहाँ काले अक्षरों में लिखा था—'*Made in England*' और उसने अनुभव किया कि दीवार पर टँगे थर्मामीटर पर पारा से लिखा है—'इंगलैंड ने भारत को अपने ख़ूनी दाँतों में दबोच.....' और एकाएक थर्मामीटर टूट गया। ★

डायरी से

रात को एक बज रहा है। मेरी ज़िन्दगी की तरह यह रात भी सूनी और बिल्कुल ख़ाली-ख़ाली है। वातावरण पर पूरी शान्ति छाई है। मैं अपनी रिस्ट-वाच की चिकचिक सुन रहा हूँ। दूर, एक भिखारी ज़ोर से बोल उठता है 'दाता! अन्धे ग़रीब को भीख दो' और चौराहे पर टूटे मन्दिर की तरफ़ से एक कुत्ते के भौंकने की आवाज़ आ रही है। शायद वह भी भूखा है। भिखारी और कुत्ते में क्या फ़र्क है! अब मनुष्य और पशु में अन्तर ही क्या रहा! कभी-कभी मेरी दृष्टि समीप के ख़ाली पलंग पर चली जाती है जिस पर बिछावन तो अच्छी तरह बिछा हुआ है लेकिन उस पर सोनेवाली मुझसे दूर मैके में है जिसे समाज ने जीवन-संगिनी की पदवी दे रखी है। शायद इस समय वह वहाँ गहरी नींद में होगी या कभी-कभी करवट भी बदल लेती होगी, जिन करवटों में माँ का प्यार,

पत्नी का प्रेम और बेटी का दुलार छिपा होगा। वह मुझसे दूर जा बसी है ठीक मेरे अरमान की तरह जो चार साल पहले किसी बेवफ़ा की गोद में जा बसा था। दुनिया की यही रीत है! पत्नी मुझसे दूर है, मेरा कवि-दोस्त अलग है जो मेरी टूटती आहों और आशाओं का अनुभव कर सदा गुनगुनाया करता है 'आशा ने भरमाया तुझको, ओट खड़ी मुस्काय निराशा' और मेरी माँ भी तो मेरे पास नहीं है।

इस समय हाथ में फ़ाउन्टेनपेन है जो मेरे लिए बूढ़े की लाठी से कम और बादशाह की सल्तनत से ज्यादा नहीं। कैलेण्डर से फाड़ कर निकाला हुआ नवम्बर का काग़ज़ सामने पड़ा है जिस पर मैं कुछ लिखने जा रहा हूँ। इस काग़ज़ और मेरी क़िस्मत में तो कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं। बिचारा ग्यारह माह तक कैलेण्डर का प्यारा धन बन कर रहा और काम निकल जाने के बाद किस बेदर्दी से निकाल दिया गया। अकेला दिसम्बर एक शक्तिशाली साम्राज्य के महाराजा के समान राज्य कर रहा है। छुट्टियाँ बतानेवाले लाल अदद जैसे दिसम्बर की अभिमानी आँखें हैं जो कह रही हैं—

'I am the monarch of all I survey.
My right there is none to dispute.'

यह मूर्ख है। मेरे दुर्भाग्य से शिक्षा नहीं लेता और मेरी बर्बादी से यह प्रभावित भी नहीं हो रहा है, हालाँकि यह ठीक मेरे समीप दीवार पर टँगा है और मुझे कई बार आहें भरते और सिसकियाँ लेते भी सुन चुका है। ख़ैर, गीदड़ को जब मौत आती है तो वह शहर की ओर भागता ही है। अक्सर कुछ लोग कहा करते हैं कि मैं रंगीन कहानी

लिखूँ। रंगीन कहानी लिख तो सकता हूँ लेकिन उसकी रंगत स्याह होगी। फ़ाउन्टेनपेन की रोशनाई धोखा दे रही है। ज़रा भर लूँ तो लिखूँ।

एक दिन मैं अपनी छोटी-सी कोठरी में बैठा जेन ऑस्टेन का उपन्यास '*Pride and Prejudice*' पढ़ रहा था। मेरी आँखें मुखपृष्ठ के चित्र पर थीं जिसमें एक नवयुवक एक सुन्दर नवयुवती की आँखों को ग़ौर से देख रहा था, जैसे वे ठहरी हुई आँखें स्वयं एक संसार हों और वह युवक अपने को उस संसार का स्वामी समझ रहा हो। अचानक एक अभागा पतंगा मोमबत्ती से जला और 'प्राइड' पर गिर कर मर गया। मेरी साँस से उड़कर उस पतंगे का अधजला पंख 'प्रेज्युडिस' पर आ रहा। मैं सोचने लगा कि मोमबत्ती को अपने हुस्न का प्राइड था और वह पतंगा बेचारा उसका शिकार हो गया लेकिन उसकी मौत भी तो प्राइड की ही गोद में हुई। एक जगह यही प्राइड इतना सुन्दर है, और एक जगह इतना भयानक! आख़िर क्यों? क्यों यह डबल रोल! मैं इसी दर्शन में बिल्कुल खो गया! मैं स्वयं दर्शन बन गया। तभी गली के उस पार के मकान के सामनेवाली खिड़की से किसी के चिल्लाने की आवाज़ आई 'आग लग गई है, गुलबन्द जल्दी फेंकिए'। तब मैंने देखा कि मोमबत्ती ने मेरे गुलबन्द से इश्क़ फ़रमा दिया था जिसका नतीजा मैं भुगत रहा था। यह मुझे महँगा पड़ता यदि वह क़यामत न चिल्लाती। मैंने आग बुझाकर देखा कि एक सुन्दर नवयौवना खिड़की से अलग जा रही थी। मैंने अनुभव किया कि आग बुझा कर एक बड़ी और नई आग भड़का चुका

हूँ। उस रात मैं देर से सोया। सुबह उठने पर मेरी आँखें लाल थीं। मैं सारा दिन खिड़की को देखता रहा लेकिन अफ़सोस एक बार भी बिजली की चमक न मिली। शाम को उसी कोठरी में आराम-कुर्सी पर बैठा यह गाना गुनगुना रहा था—

'प्रेम की गोद बहारों को ज़िन्दगी देती आई है।
य' अपने सँग-सँग ज्वारों की जवानी लेती आई है।'

शाम अब रात में बदल चुकी थी। चाँदनी रात थी या यों कहिए रात बहकी हुई दुल्हन थी। कमरे की रौशनी बुझाकर मैं खिड़की पर बैठ गया। मैंने देखा वही लड़की अपने कमरे में आई और सिंगार मेज़ के सामने बैठ कर बाल सँभालने लगी। थोड़ी देर बाद आँगन से उसे किसी ने पुकारा 'बिन्दू' और वह ओझल हो गई। कुछ देर बाद वह फिर आई। बिन्दुवासिनी एक सुन्दर लड़की थी। शरीर गोरा था और दोनों गाल गुलाब की तरह लाल थे जिन पर शोख़ ज़ुल्फें बिखरी पड़ी थीं। वह एक अल्हड़ लड़की मालूम होती थी। उसके बाल उलझे थे, साड़ी बेतरतीबी से लिपटी थी और पता नहीं क्यों एक अजीब सूनापन उसके व्यक्तित्व से झलकता था। हो सकता है शायद इसीलिए मुझे उससे प्यार हो गया।

हम दोनों मिलने लगे। प्रेम की बातें होतीं। बड़े-बड़े मनसूबे बाँधे जाते। बिन्दु कहती 'तुम ऑथेलो न बन जाना' मैं मुस्कुराकर जवाब देता 'अगर तुम क्लेयोपेट्रा न हुईं तो'। दोनों की हँसी से सारा पार्क गूँज जाता। शाम को नदी किनारे ऐसे अच्छे और चुभते हुए सम्वाद बोलते जिन्हें कोई सुन ले तो यही समझे कि उपन्यास और

पत्रिकाओं से अच्छे-अच्छे सम्वाद पढ़ कर आते और बोलते जिनका रिहर्सल पूरे क़द के आइना के सामने पहले ही किया जा चुका हो।

होली का दिन था। यह बड़ा ही शुभ दिन होता है। जिसकी गोद में दो प्रेम भर दिल मिलते हैं। खुलकर हँसने-हँसाने का दिन होता है। प्रेमिका की आँखों में अपने प्रेमा के लिए एक संदेसा होता है जिसकी गवाही हाथ की अबीर देती है। प्रेमी प्रेमिका के दमकते कपोलों पर अबीर लगता है और यह स्पर्श उन दोनों के लिए एक अमूल्य निधि बन जाता है। बिन्दु भी हाथ में अबीर और दिल में अरमान सँजोये मेरे घर आई। वह अबीर लगाने ही को थी कि मेरी माँ दोनों के बीच आ गई और कड़क कर बिन्दु से बोली—'अबीर मत लगाओ। यह खेल ख़तरनाक है।' बिन्दु का सिर झुक गया और दूसरे क्षण जब उसकी आँखें उठीं तो मैंने देखा वे भर आई थीं, इनमें आशायें डूब रही थीं और अरमानों पर ओस पड़ रहे थे। मैं वह दृश्य न देख सका और हाथों को आँखों पर रख कोठरी में जाकर कुर्सी पर गिर गया और सोचने लगा कि हम कितने खुश थे! हम समझते थे कि हँसना ही हमलोगों के जीवन में है। लेकिन .... बायरन के इन शब्दों ने दिल में तूफ़ान मचा दिया:—

The spell is broke, the charm is flown!
Thus is it with life's fitful fever:
We madly smile when we should groan:
Delirium is our best deceiver.

इस समय भी मेरे सामने उसकी तस्वीर दीवार पर टँगी है। उसकी

डायरी से—

तस्वीर शीशा के अन्दर फ्रेम में लगा चुका हूँ क्योंकि मैं हमेशा डरता हूँ कि उसकी तरह यह तस्वीर भी मुझसे अलग न हो जाए। रात को गश्त लगाने वाली दो पुलिस के बूट की आवाज़ अपने बैलकोनी के नीचे सुन रहा हूँ। मैं अभी इत्मीनान चाहता हूँ और यह आवाज़ मेरे दिमाग़ पर हथौड़े मार रही है। लेकिन इससे क्या! कुछ पुलिस भी तो चोरों और राहज़नों के पेट पर लात मारना नहीं चाहती। इसीलिए तो वह एक धीमा शोर लेकर चलती है जिसे सुनकर चोर ख़बरदार हो जायें। पासवाले तिनमंज़िले कोठे से बिल्लियों के लड़ने की आवाज़ आ रही है, जो वातावरण को बहुत भयानक बना रही है। अभी अभी मैंने आशिमा की आवाज़ सुनी है। वह बिल्लियो को भगा रही थी। उसकी आवाज़ में थरथराहट थी, ठीक वही थरथराहट जो मरते समय डेस्डिमोना की आवाज़ में थी। उसकी आवाज़ में वही कम्पन था, जो जूलियस सीज़र को सीनेट में जाने से रोकते वक्त कलपूर्निया की आवाज़ में था। थरथराहट और घबराहट आशिमा की आवाज़ में क्यों न हो जब उसका नन्हा-मुन्ना सुन्दर लड़का मृत्यु-शैय्या पर पड़ा है। सुना जाता है कि बिल्लियों का लड़ना अच्छा नहीं होता।

हवा ज़ोर से चल रही है। अभी एक तेज़ झोंका आया और टेबुल-क्लॉथ के एक कोने को उलट कर चला गया है। सुबह मैंने एक पत्र इसके नीचे रख दिया था जो अब मेरे सामने पड़ा है। यह होशियारपुर से आया है और लिखनेवाली कोई मिस कामिनीबाला, एम० ए० हैं। मैं इसे दुबारा पढ़ रहा हूँ—

—डायरी से

होशियारपुर

४—१२—१९५१

मैं समझ नहीं पा रही हूं कि आपको किस नाम से याद करूँ। आपकी एक कहानी मुझे पसन्द आई और साथ साथ आप भी। क्या आप मुझे अपनी गीता बना सकते हैं? मैं अपने सुन्दर जीवन में आपकी कमी पा रही हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं कह सकूँ 'मैं आपसे प्रेम करती हूँ'। क्या मेरी मुहब्बत का जवाब मुझे मिल सकता है?

आपकी अपनी—

कामिनी

मुझे हँसी आ रही है। होशियारपुर की रहनेवाली बेवकूफ़ क्योंकर है। वह मुझसे मुहब्बत करती है और बिना देखे! इन लड़कियों का क्या ठिकाना। अभी आग, अभी पानी। '*Woman, thy vows are traced in sand*' आशियाना बिजली से मुहब्बत करता है। शायद उसकी उम्र बहुत कम है इसीलिए तो दुनिया की चाल, ज़माने की गर्दिश और वक्त के इन्क़लाब से ग़ाफ़िल है। भोली कामिनी! ज़रा आकर मुझे देखो तो। उस कथाकार में जिसे तुम अपना दिल दे चुकी हो और मुझमें ज़मीन आस्मान का फ़र्क है। मृग-मरीचिका के पीछे मत दौड़ो। तुम भावनाओं में बह रही हो, यह अच्छा नहीं। क्या तुम यह नहीं जानतीं कि जब भावनायें द्वार खटखटाती हैं तो अक्ल खिड़की की राह भाग जाती है। तुम्हें अभी जीना है। इस भयानक रोग की शिकार न बनो जो घुन की

तरह इन्सान को खा जाता है और केवल एक ढाँचा रह जाता है जिसे लाश कहते हैं। हाँ, कामिनी! तुम्हारे प्रेम का उत्तर प्रेम से अवश्य दूँगा यदि तुम पाँच-छः साल की भोली लड़की बन जाओ तो, क्योंकि इतनी ही अवस्था में मेरी अच्छी बहन भी तो मर गई है।

धीरे-धीरे मेरे कमरे में मृत्यु जैसी शान्ति और बाहर मरघट जैसा सन्नाटा छाता जा रहा है। यही वातावरण तो मेरे हृदय में आग लगा रहा है। यह पंक्ति मेरे होठों पर आकर रह गई है—

'It is better to dwell in the midst of alarm
Than reign in this horrible place.'

आँखें बोझिल हो रही हैं। अब मैं सो रहा हूँ। फिर कभी!

★

छप गया ! छप गया !!

बिहार के उदीयमान कवि एवं सुप्रसिद्ध रेडियो कलाकार

श्री गया प्रसाद खन्ना 'उदय'

की

कविताओं का संग्रह

सरगम

[बिहार राज्य (शिक्षा विभाग) द्वारा विद्यालयों तथा पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत]

जिसकी कविताओं में आप पायेंगे

भावनाओं का सरलीकरण, कल्पना की उड़ान,

अनुभूति की तीव्रता, अभिव्यक्ति की सचाई

और

'ज़बाँ ऐसी कि सब समझें'।

नेत्र-रक्षक दोरंगा आवरण, मन-रक्षक गीत, स्वर-लिपि, १०४ पृष्ठ;

इतना आकर्षण और मूल्य १॥) मात्र

प्रथम संस्करण समाप्ति पर है। शीघ्र ही अपनी प्रति पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्त करें अथवा निम्नलिखित पते से आर्डर भेजें—

प्रकाशक :—

बर्मन कम्पनी

मुज़फ्फ़रपुर (बिहार)